मीठे प्रवचन- 3

"दृष्टिकोण सम्यक् दृष्टि का"

''प्रवचनकार''
एलाचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक:
श्री सत्यार्थी मीडीया
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

प्रथम संस्करण : मई 2014
प्रतियाँ : 3,000

मीठे प्रवचन- 3

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

मंगलाशीष:
प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशक
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)
मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

"पुरोवाक्"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

इस अखिल विश्व में जितने भी चराचर प्राणधारी जीव हैं वे सभी ज्ञान चेतना व दर्शन चेतना से सहित है। ज्ञान चेतना और दर्शन चेतना से रहित कोई भी जीव नहीं हो सकता ।, जिस प्रकार उष्णता के बिना अग्नि, शीतलता के बिना जल, स्निग्धता से रहित घृत, अहिंसा से रहित धर्म, कर्म से रहित संसारी जीव, देह से सहित सिद्ध परमेष्ठी नहीं हो सकते उसी प्रकार उभय चेतना से रहित कोई भी जीव नहीं हो सकता । ज्ञान चेतना के उपयोग की अपेक्षा आठ भेद हैं और दर्शन चेतना के चार ।

ज्ञान दर्शन के निमित्त से होने वाले जीव के अनुविधायी परिणाम को उपयोग कहते हैं।

१. कुमति ज्ञानोपयोग २. कुश्रुतज्ञानोपयोग ३. कुवधिज्ञानोपयोग ४. मतिज्ञानोपयोग ५. श्रुतज्ञानोपयोग ६. अवधिज्ञानोपयोग ७.मनः पर्ययज्ञानोपयोग ८. केवलज्ञानोपयोग - ये ज्ञानोपयोग के ८ भेद हुये ।

१. चक्षुदर्शनोपयोग २. अचक्षुदर्शनोपयोग

३. अवधिदर्शनोपयोग ४. केवलदर्शनोपयोग-ये चार दर्शनोपयोग हुए।

प्रत्येक जीव को ज्ञानोपयोग के आठ भेदों में से कम से कम एक और दर्शनोपयोग के चार भेदों में से कोई एक उपयोग नियम से रहता है।

संसार में विद्यमान सभी व्यक्तियों का वस्तुओं के प्रति अवलोकन व अवगम का दृष्टिकोण पृथक् - पृथक् होता है उनकी अपेक्षा भी पृथ्क - पृथ्क ही होती है। एक स्थान से खड़े होकर कोई छद्मस्थ किसी भी वस्तु के सम्पूर्ण धर्मों को नहीं जान सकता, उसे वस्तु को चहुँ ओर से या दशों दिशाओं से या सब ओर से देखना आवश्यक है। इतना ही नहीं वस्तु की समग्र दशाओं

को जानने के लिये सार्वकालिक अध्ययन भी जरूरी है। मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि दोंनों ही किसी वस्तु को जानते व देखते हैं, किन्तु दोंनों का नजरिया भिन्न - भिन्न ही होता है। मिथ्यादृष्टि अनंत धर्मो को देखते हुये भी उसकी दृष्टि मिथ्या है इसलिये उसका ज्ञान - श्रद्धान भी मिथ्या ही होता है। ज्ञान में सम्यक्पना श्रद्धान से आता है वस्तु से नहीं । सम्यक्दर्शन का अर्थ है समीचीन या यथार्थ रूप से पदार्थ को जानने और मानने की शक्ति । सम्यक्दर्शन के होते ही सम्पूर्ण ज्ञान सम्यक् अवस्था को प्राप्त हो जाता है। सम्यक्दृष्टि का दृष्टिकोंण सम्यक् ही होगा, क्यों कि वह वस्तु को किसी एक कोंण से नहीं देखता । सम्यक् दृष्टि का दृष्टिकोण गुण को गुण रूप - दोष को दोषरूप देखना होता है सम्यक् दृष्टि को स्वकीय दोष भी दोष और शत्रु के गुण भी गुण रूप दिखायी देते हैं। जिसे स्वकीय या स्वकीय आराध्य के या (जिसके प्रति उसकी आस्था, भक्ति समर्पण है उसके दोष भी)गुण रूप दिखते है वह अंध भक्त है, अंधविश्वासी है तथा ऐसे व्यक्ति परमत में (जिसे अपना विरोधी मानता है उसमें) कोई भी अच्छाई या सदगुण दृष्टिगोचर नहीं होते । वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये हमें अपना पक्ष छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि पक्षपाती न्यायी नहीं हो सकता । प्रस्तुत कृति "दृष्टिकोण सम्यक् दृष्टि का" यह प्रेरणा देती है कि हमें सर्व दृष्टियों से और सर्वकोणों से, सर्व अपेक्षाओं से वस्तु के समग्रस्वरूप को जानना चाहिये तभी हम समीचीन दृष्टि वाले दृष्टा व समीचीन जानने वाले ज्ञाता बन सकते हैं।

'मीठे प्रवचन' का तृतीय भाग भी आज आपके कर कमलों में है स्व पर हितार्थ प्रवचनों का संग्रह संघस्थ 'बा० ब्र० श्रेयादीदी' (अंशू जी तिजारा) ने किया है इसके अतिरिक्त संघ के सभी त्यागी व्रतियों का भी यथायोग्य सहयोग प्राप्त हुआ है, मुद्रण का कार्य 'सत्यार्थी मीडिया' के प्रधान सम्पादक जैनरत्न सचिन जैन 'निकुंज' टूण्डला ने किया । प्रकाशन हेतु न्यायोपार्जित धन का सदुपयोग उदारचेता महामना सुधी श्रावक ने गुप्त रूप में किया है, प्रकाशन 'डी.सी मीडिया' ने किया है। एतदर्थ उपरोक्त सभी त्यागी व्रती - साधकगण व (सुगुप्त रूप में व प्रकटरूप में सहयोगी सभी भक्त गणों को) सुधी श्रावकों को यथायोग्य समाधि वृद्धिरस्तु, धर्मवृद्धिरस्तु शुभाशीष ।

सुधी पाठकों से अनुरोध है कि वे हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर प्रस्तुत कृति (दृष्टिकोंण सम्यक्दृष्टि का) मीठे प्रवचन का सम्यगवलोकन करें, निःसंदेह उन्हें सम्यगबोध की व आत्महित के सूत्रों की प्राप्ति होगी ।यह सम्यग्ज्ञान ही वैराग्य, संवेग, संयम,तप, तत्त्वचिंतन व आत्मध्यान की आधार भूत शिला है अतः चूकना नहीं ।

सुधी पाठक व संयमी विज्ञजन कृति में निहित त्रुटियों के सम्बन्ध में विनम्र परामर्श देकर अवश्य ही हमारा अनुग्रह करेंगे ।

"सर्वेषां शांति भवतु"

जैनं जयतु शासनम्
श्री शुभमिती चैत्र सुदी त्रयोदशी
रविवार वी.नि.सं. २५४०
सीकरी - राजस्थान

धर्मोवर्द्धताम्
ॐ ह्रीं नमः
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिनचरणाम्बुज चंचरीकः
अप्रैल - 13 - 2014

श्री सत्यार्थी मीडीया पेश करते हैं महाविशेषांक

समझाया रवीन्दु न माना

गुरुदेव से सम्बंधित छायाचित्र, संस्मरण, भजन, कविता या साधना की विशेषता प्रदर्शित करता हुआ आलेख अवश्य प्रेषित करें ।

पूज्य श्री के विराट व्यक्तित्त्व (गागर में सागर) को भरने का दु:साहस

समझाया रवीन्दु न माना

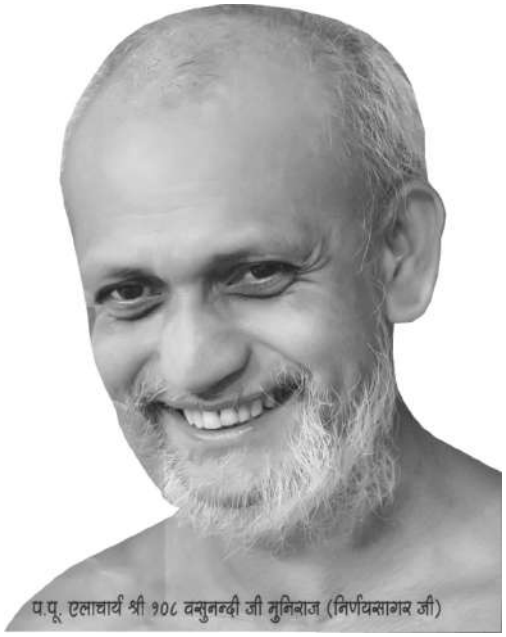

प.पू. एलाचार्य श्री १०८ वसुनन्दी जी मुनिराज (निर्णयसागर जी)

1

''सत्संग है प्रकाश स्तम्भ''

संत पुरुषों का सानिध्य जीवन में विद्यमान समस्त अज्ञान तिमिर को तिरोहित करने वाला नंदा दीप है। धन्य भागी होते हैं वे पुरुष, जिन्हें संतो का सानिध्य प्राप्त होता है। बड़भागी हैं वे जो संतो के सानिध्य को पुरुषार्थ करके प्राप्त करते हैं। वे परम सौभाग्यशाली हैं जो संतों के सानिध्य से समुचित लाभ उठाने में समर्थ हैं। जो संत के सानिध्य को प्राप्त नहीं कर पाते वे अभागे कहलाते हैं, तथा जो संत सानिध्य पाकर के भी लाभ न ले सकें उन्हें दुर्भाग्यशाली ही कहना चाहिए तथा जो संत सानिध्य पाकर उनकी निंदा, अवमानना, अविनय व उपसर्ग करके पापोपार्जन कर लेते हैं उन्हें तुम्ही बताओ क्या कहें ?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

2

''जीवन में जरूरी है अनुशासक''

जिस प्रकार बिना लगाम का घोड़ा व बिना ब्रेक की गाड़ी खतरनाक होती है, बिना मार्ग दर्शक व अनुशासक के जीवन भी पतनोन्मुखी हो जाता है। संयमित व्यक्ति ही गुरु हो सकता है, वही समीचीन जीवन का निर्माता होता है तो वही परम संरक्षक भी है। उसकी छत्रछाया के बिना जीवन में समीचीन गति और मति नहीं आ सकती । गुरु का कठोरतम अनुशासन शिष्य के जीवन को निखारने वाला, परिस्कृत व सुसंस्कारित करने वाला होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

3

''समर्पण किसके प्रति''

जिसके जीवन में सम्यक् श्रद्धा का अडिग सुमेरू कुलाचल हो, जिसकी चेतना के क्षितिज पर सम्यक्ज्ञान का सूर्य उदित हो चुका हो, जिसकी अंत रंग व बहिरंग वृत्ति व प्रवृत्ति स्वकीय शुद्ध प्रकृति के अनुरूप है, जो यथाजात प्राकृत रूप का धारक है, जिसके अंतरंग व बहिरंग में कोई ग्रंथि नहीं है। जिसकी आत्मा में निरन्तर समत्व की निर्मल जल धारा बह रही है, जो तप की पवित्र वह्नि से संक्लेशता व दुर्गुणों रूपी ईंधन को जलाने में संलग्न है तथा जो निरन्तर आत्म ध्यान के प्रखर मार्तण्ड से पाप पंक का शोषण कर रहे हैं ऐसे क्षमादि दश धर्मों के साक्षात मूर्त स्वरूप हैं,जिनमें सर्वव्रतों की महाछवि है उन्हीं परम पूत, धरती के देवताओं के प्रति समर्पण करना अपने जीवन को सार्थकता से भरना है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

4

''जला ले ऐसा दीपक''

जिसमें बाहर का घृत व तेलादि स्निग्ध डालने की आवश्यकता नहीं है जिसके लिए मिट्टी, काँसा, तांबा, पीतल, चांदी,सोने आदि के दीपक की भी आवश्यकता नहीं है। जिसमें कपास की बाती भी नहीं डाली जाती, जिसको आँधी, तूफान बुझा नहीं सकते, जिसकी लौ कभी मंद नहीं पड़ती, जिसमें कोई धूंआँ नहीं निकलता, जो रत्न दीपक की तरह से शाश्वत है। उसी चेतन दीपक को जला ले । बस, मैं तुझसे इतनी सी बात कहने यहाँ आया हूँ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

5

''कौन है अच्छा या बुरा''

संसार की कोई भी वस्तु न सर्वथा अच्छी है और न ही सर्वथा बुरी । वस्तु जैसी है वैसी है, उसका जो स्वभाव है वही स्वभाव रहेगा । वह स्वभाव ही धर्म है। वस्तु में अच्छा या बुरापन आता है उसके सदुपयोग व दुरुपयोग से । माना कि पत्थर है वह देवता की मूर्ति रूप भी है, मकान भी बनाता है, कूप आदि भी, आटा पीसने के लिए चक्की रूप या मसाले पीसने हेतु सिल - लोड़ा रूप भी है तब वह पत्थर भी अच्छा है, किन्तु वही पत्थर यदि किसी का सिर फोड़ दे तो वह अच्छा कैसे कहा जा सकता है?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

6

''पर्याप्त है एक प्रज्ज्वलित दीपक''

प्रज्वलित एक दीप भी पर्याप्त है अंधकार मिटाने के लिए और बुझे हुए असंख्यात व अनन्त दीपक भी व्यर्थ ही हैं। एक जाज्वल्यमान दीपक अनंत बुझे दीपकों को जला सकता है, अनंत बुझे दीपक एक जले दीपक को भी नहीं बुझा सकते । महत्व दीपक का नहीं ज्योति का होता है, ज्योति रहित स्वर्ण दीपक भी व्यर्थ है जबकि जाज्वल्यमान ज्योति से युक्त मिट्टी का दीपक भी सफल और सार्थक है स्व और अन्यों के लिए भी। साधना सार्थकता का बीज है और प्रेरक निमित्त भी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

7

''सर्वार्थ साधक है - मौन''

मौन सकल कर्मों(कार्यों) की सिद्धि करने वाला है,समस्त द्वन्द, कलह,अशान्ति व संक्लेशता का परिहारक भी है। मौन रहने वाले को भले ही कोई मूर्ख कह दे, किन्तु वह विद्वानों का भी शिरोमणि माना जाता है। सर्वाधिक मौन पालन ज्ञानी पुरुष ही कर सकता है । मौन से ज्ञान व दर्शन का क्षयोपशम बढ़ता है। सुख शान्ति की अनुभूति होती है। आत्म शक्ति प्रकट होती है, व्रतों का पालन भी सुगमता से हो सकता है। अच्छे - अच्छे वक्ता भी मौनोपदेश के सामने नतमस्तक ही माने जाते हैं।तीन योगों से किया गया मौन का पालन आत्मोपलब्धि में समर्थ कारण भी है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

8

''धार्मिक या धर्मात्मा''

धर्म, रूढ़ि और लकीरों को पीटने का नाम नहीं है,अपितु धर्म का अर्थ है पूर्ण जागरण, होश में आ जाना, अपने शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता का बोध हो जाना । इसके बिना व्यक्ति धार्मिक तो बन जाता है किन्तु सच्चा धर्मात्मा नहीं, क्योंकि धर्मात्मा बनते नहीं होते हैं जो बाहर से बना वह सच्चा धर्मात्मा नहीं है ।सच्चा धर्मात्मा तो वही है जिसकी आत्मा में धर्म उत्पन्न हो गया हो । सोचो ? खुद के बारे में कि तुम धार्मिक हो या धर्मात्मा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

9

''संकल्प का मूल्य''

संकल्प मानव की वह महत्वपूर्ण निधि है जिसकी कीमत संसार की अन्य वस्तुओं से नहीं आंकी जा सकती है। संकल्प वाले कार्य का लगभग बहु भाग पूर्ण हुआ मान लिया जाता है। संकल्प की दृढ़ता से असंभव कार्य भी संभव हो जाता है । जो संकल्प का धनी रहा ऐसा व्यक्ति संसार में अपना परिचय प्रदर्शित कराने को कभी मोहताज नहीं रहा । संकल्पशील के साथ तो विश्व की समग्र शक्तियाँ स्वतः ही सिमट कर उसी प्रकार आ जाती हैं जैसे - सागर में सतत् वाहिनी नदियाँ ।

शिथिल संकल्पवान् कभी सफलता का सम्यक् भोग या उपयोग भी नहीं कर सकते ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

10

''मृत्यु बोध ही आत्म बोध''

जब आत्म प्रदेशों में शरीर की मृत्यु का बोध हो जाता है तभी आत्मशोध का मार्ग प्रारम्भ हो जाता है और वह भव्य जीव बोधि और सम्बोधि को भी प्राप्त कर लेता है। अनात्मा की नश्वरता व आत्मा की अविनश्वरता का बोध होने पर ही आत्मज्ञान व वैराग्य प्रस्फुटित होता है और तभी संभव है वैराग्य के पुष्प की सौरभ,तप - त्याग की मकरन्द । इसके बिना तो ज्ञान का बीज सड़ भी जायेगा, और वह शिवपुर के प्रशस्त ऊर्ध्वगामी शिखर पर चढ़ नहीं पायेगा, नीचे ही पड़ जायेगा या असंयम में गड़ जायेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

11

''क्या होता है सन्यास''

सन्यास का आशय है आत्मा से साक्षात्कार करने की प्रक्रिया । जो कि संसार,शरीर व भोगों में आकण्ठ डूबने व कषायों के उद्रेक की अवस्था में संभव ही नहीं है। आत्मा का स्वात्मा से साक्षात्कार ही परमात्म पद प्राप्त करने का अनेकानेक संभावनाओं से परिपूरित बीज है। इसके बिना जीवन को न तो सही रूप में संभाला ही जा सकता है और न ही आंतरिक श्रृंगार किया जा सकता है। आत्मा की सम्यक् संभाल ही आत्मा की आराधना व साधना की परिष्कृत प्रक्रिया है और इसका फल है वीतराग विज्ञान । संसार से जुड़ने का अर्थ है राग - द्वेष की कीचड़ में संलिप्तता तथा विराग का अर्थ है कर्म बंधन तोड़ने के लिए समग्र तैयारी कर लेना और वीतरागता का आशय है राग - द्वेष की कीचड़ को धोकर अपना चेहरा स्वच्छ कर लेना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

12

''संघर्ष है विराटता का बीज''

संघर्षों का सामना जो समतापूर्वक करता है तथा जीवन की प्रत्येक चुनौती को स्वाभिमान के साथ स्वीकार करता है वही व्यक्ति अपनी चेतना की समग्र शक्तियों को उद्घाटित करने में सफल हो जाता है । जो व्यक्ति जितना महान होता है, प्रकृति उसकी उतनी ही बड़ी परीक्षा लेती है । महान सम्पत्ति उसी को प्राप्त होती है, जो महान विपत्तियों को झेलने में समर्थ होता है। सामान्य व्यक्ति के पास न तो महान सम्पत्ति आती है और न महा विपत्ति । तथा गगनांगण में संचरित सुधाकर (चन्द्रमा) ही वृद्धि व हानि को प्राप्त होता है, खद्योत वत् टिम - टिमाने वाले तारे नहीं ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

13

''क्यों बने कोरे सहिष्णु''

सहिष्णुता जीवन की कोई बुराई नहीं है अपितु वह अच्छाई और सच्चाई है। जो व्यक्ति सहनशील होता है वह समग्र वसुधा का भार सहन करने में भी समर्थ होता है। इतना ही नहीं जगती तल व भूमण्डल में विद्यमान समग्र आध्यात्मिक, भौतिक, दैविक व प्राकृतिक शक्तियाँ भी उसे पाने के लिए उसी प्रकार लालायित रहती हैं जिस तरह पुष्प पर मंडराने के लिए भ्रमर और दीपशिखा को चूमने के लिए तड़पते शलभ । जब तुम सहिष्णु बन जाओगे तो तुम्हें संसार के किसी भी प्राणी से कोई गिला या शिकवा नहीं होगा, सहिष्णुता में कुछ खोना नहीं है सिर्फ पाना ही पाना होता है वह भी स्वकीय, अखण्ड,अविनाशी, अनंत तत्त्व से युक्त, नित्य निर्मल स्वाभाविक, नैसर्गिक, आत्मोत्पन्न आनंद ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

14

''सिंधु का बीज - बिंदु''

बीज में वृक्ष, कंकर में शंकर, बिंदु में सिंधु, आत्मा में परमात्मा, अणु में विराट सत्ता एवं किरण में समग्र ज्योति के दर्शन कर लेने वाला महा बुद्धिमान ही हो सकता है, एक अंश की उपेक्षा किसी रूप में समग्र की ही उपेक्षा है, जो बूंद को भी क्षुद्र मान कर तिरस्कार करता है वह जीवन में सागर को तो प्राप्त कर ही नहीं सकता अपितु बूंद से भी वंचित रह जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में भी परमात्मा आदि बनने की अनंत - अनंत संभावनाऐं विद्यमान हैं,उन संभावनाओं का भी वही प्रकटीकरण कर सकता है जो एकांश धर्म को स्वीकार करने में समर्थ है। धर्मात्मा की स्वीकारोक्ति ही परमात्मा के मार्ग पर बढ़ने का टिकिट है। शक्कर के एक दाने की उपेक्षा समग्र की उपेक्षा ही है। अतः सिंधु की यात्रा का प्रारम्भ भी बिंदु से ही करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

15

''परमात्मा की नींव''

इंसानियत परमात्मा की नींव है तो परमात्मपना है उस भगवत्ता की अन्तिम शिखर पर लहराती ध्वजा । बिना नींव के भवन का निर्माण असंभव है, बिना बीज के वृक्ष से फलोत्पत्ति भी नितांत असंभव ही है, उसी प्रकार इंसानियत/ मानवता के अभाव में भगवत्ता भी कभी प्रकट नहीं हो सकती ।यदि परमात्मा की परम ज्योति निजात्म प्रदेशों में प्रकट करना है तो मानवता का दीपक तप - त्याग, नियम का स्नेह एवं उत्तम ज्ञानादि अनंत गुणों की वर्तिका की आवश्यकता की पूर्ति भी अनिवार्य है। बिना मानवता के उपासना, साधना, भावना और भगवत्ता उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार पट्ट के बिना चित्र, आधार बिना आधेय, पय के बिना घृत ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

16

''क्यों है महत्वपूर्ण संकल्प की दृढ़ता''?

एरण्ड,बबूल व बेशर्म की लकड़ियों का ढेर लगाने की अपेक्षा श्रेष्ठ चंदन का एक टुकड़ा ही पर्याप्त है, काँच के पर्वत जैसे उत्तुंग ढेरों से हीरे का एक छोटा टुकड़ा ही श्रेष्ठ है, हजारों विष फलों की अपेक्षा एक अमृत फल श्रेष्ठ है। असंख्यात, दुष्कर्म, कुकर्म, द्वेष व अपराध करने से एक सुकृत, पुण्यकर्म, परोपकार श्रेष्ठ है, अनंत दुःखों को भोगने की अपेक्षा क्षणार्द्ध का सच्चा सुख अच्छा है, अनंत जन्म लेकर भी संसार परिभ्रमण करने की अपेक्षा संसार का अन्त करने वाला एक भव भी श्रेष्ठ है। उसी प्रकार दुर्जेय संग्राम में सहस्रों कोटि भट सुभटों को जीतने की अपेक्षा अपनी आत्मा को जीतना श्रेष्ठ है, जो मानव संकल्प के धनी एवं निस्वार्थ समर्पण करने वाले होते हैं निः सन्देह वे अपनी मंजिल को प्राप्त करने में भी सफल हो जाते हैं । जिन्हें खुद अपनी क्षमताओं पर विश्वास नहीं होता, उनको कोई भी मंजिलों तक नहीं पहुँचा सकता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

17

''मृत्यु की पदचाप''

शरीर की नश्वरता व आत्मा की अविनश्वरता का यथार्थ अनुभव ही आत्मबोध का कारण है। इस बोध के बिना सन्यास विफल ही होता है। मृत्यु का साक्षात् दर्शन ही सन्यास का पदार्पण है। जब तक मनुष्य संसार की आपा - धापी में मस्त रहता है तब तक उसे मौत की पद - चाप सुनाई नहीं पड़ती, जैसे ही अपने उपयोग को बहिरंग से हटाकर अंतरंग की ओर परिवर्तित किया जाता है तब ही अपनी मौत के साक्षात् दर्शन होते हैं, इतना ही नहीं तब उसे अनंत अतीत व अनंत अनागत भी अनुभव गोचर होता है उसी समय उसे तन की अनित्यता व चेतन की नित्यता से साक्षात्कार होता है। अपने अंतरंग का परिशोधन करना स्वराज्य व स्वतंत्रता को प्राप्त करने हेतु किया गया संग्राम है, आन्दोलन है। यह बात निश्चित है कि जीवन में बिना क्रान्ति के शाश्वत शान्ति की प्राप्ति असंभव ही है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

18

''बाहर का संबंध भीतर से''

श्वासोच्छ्वास अंतर और बाह्य जगत से जोड़ने वाली कड़ी है। बिना श्वासोच्छ्वास के अंदर और बाह्य का संबंध जुड़ नहीं सकता, इस संबंध के द्वारा ही अंतरंग व बाहिरंग एक दूसरे से साक्षात्कार करने में समर्थ हो पाते हैं। अंदर जाने वाली श्वाँस कोई बुरा संदेश लेकर अंदर न जाये ये भी कुछ निश्चय नहीं है मानव से जुड़े एक मानव की तरह । प्रत्येक मानव में मानवता होनी चाहिए । जिस उच्छ्वास में शुभ ही शुभ निसर्गत हो अथवा अशुभ ही अशुभ का आहरण हो । श्वासोच्छ्वास की शुभता व अशुभता भी अपने विचारों पर आधारित है। जब तक श्वासोच्छ्वास स्वस्थ है तब तक तन और मन भी स्वस्थ रह सकते हैं। ध्यान से देखो कहीं तुम्हारी श्वांसरुग्ण तो नहीं है यदि ऐसा होगा तो तुम्हारे अन्दर बाहर के संबंध भी रुग्ण हो जायेंगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

19

''आत्म ज्ञान है सजल धनश्याम''

तीन लोक में सारभूत वीतराग विज्ञानता है, इसकी प्राप्ति ही साधना की सम्यक् फलोपलब्धि है, किन्तु वह विज्ञानता वीतरागता की पूर्णता पर ही संभव है,वीतरागता की पूर्णता संयम से ही होगी संयम से दीक्षा अनिवार्य है। दीक्षा का अर्थ है असंयम के परित्याग का त्रैयोग व त्रैकरण से संकल्प करना । यह संकल्प भी जीवन में तभी संभव है जब वैराग्य चरम सीमा को प्राप्त हो । वैराग्य की तीव्र बाढ़ से ही राग - द्वेष की कीचड़ धुलती है। किसी के तन के प्रति राग लोहे की सुदृढ़ श्रृंखला के समान है तथा सामान्य राग दृढ़ रज्जू के समान है, विराग भाव राग - द्वेष की कीचड़ को हटाने वाला नीर है अथवा राग के दृढ़ बंधनों को तोड़ने वाली छैनी है। ज्ञान और वैराग्य ही आत्मा के परिशोधन करने वाले तत्त्व हैं इन्हीं के द्वारा संवर व निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति होती है ।संवर व निर्जरा ही मोक्ष के साक्षात् हेतु हैं। अतः ज्ञान के सजल घन श्याम से वैराग्य की वर्षा होनी चाहिए तभी उन सबल जीवों की सार्थकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

20

''कैसे जियें''

जन्म और मरण की प्रक्रिया प्रायः सभी मानवों में समान रूप से घटित होती है। किन्तु जन्म और मरण के बीच की सरल या वक्ररेखा पर चलने के तौर - तरीके सभी के अलग - अलग ही होते हैं। जन्म और मृत्यु के दो बिन्दुओं के बीच ही व्यवहार जीवन होता है। निश्चय से तो जीवन जन्म और मृत्यु के पहले भी होता है और बाद में भी । जिसने जीवन को वरदान मानकर जिया हो उसकी मौत भी महोत्सव बन जाती है तथा संसार से पार करने वाली वरदान ही होती है किन्तु जिसने अपने जीवन को बोझ मानकर ढोया है या अभिशाप मानकर जिया है, उसकी मौत वरदान कैसे बन जाएगी? संसार के विद्यालय में जो सही पाठ पढ़ते हैं उन्हे संसार के विद्यालय में पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता । किन्तु जो संसार के विद्यालय जीवन रूपी कक्षा में असफल रह जाते हैं उन्हें संसार किनारा का खोजने पर भी नहीं मिलता ।

21

''कैसे करें - जीवन का सही मूल्यांकन''

जो मन, वचन, काय का सही सदुपयोग करते हैं वे जीवन का सही मूल्यांकन करने में समर्थ होते हैं । जो अपने जीवन का सही मूल्यांकन कर सकता है,।वह अपने जीवन में असंभव को संभव कर सकता हैं। प्रत्येक मंजिल उसके चरण चूमने को लालायित रहती है। पूर्व सुकृतों का बखान करना भविष्य में विकास के द्वारों को बन्द करना व मार्ग अवरुद्ध करने जैसा है। जो अंतर में जितना खाली होता है वही बहिर्जगत में अपनी प्रशंसा करता है। बाह्य वस्तुओं को समेटता जाता है तब अन्त में वस्तुएँ तो यहीं फैली रह जाती हैं उसी की आत्मा सदैव के लिए सिमटती रहती है। जो अपने अंतरंग का विस्तार करते हैं वे ही कर्मों से मुक्ति पा सकते हैं । जिनका अंतरंग संकीर्ण होता है वे कभी भी कर्मों का क्षय नहीं कर सकते, मोक्ष उनके लिए कहने भर को रहेगा । किन्तु वे उसे पा नहीं सकेंगे ।

22

‘‘सुव्यक्तित्व निर्माण के नुख्से’’

वय, तप, ज्ञान, संयम,पद आदि में वृद्ध/ बड़ों का आदर करना, सदैव सत्य बोलना, जीवन के प्रत्येक क्षण में ईमानदारी को साथ लेकर चलना, अपने तीनो योगों से स्व - पर के उपकार में संलग्नता, प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव, साधर्मी व गुणी जनों के प्रति वात्सल्य का भाव रखना, सदैव गुणों की प्रशंसा व ग्रहण करने की उत्कृष्ट अभीप्सा,जीवन में किसी भी परिस्थिति में धैर्य व साहस को न छोड़ना, विनम्रता व लघुता से युक्त व्यवहार, प्रत्येक पल विवेक की जागृति, प्रसन्न चित्तता, गंभीरता, करुणा व वैराग्य से परिपूरित हृदय इत्यादि सूत्र वाक्य मानव के व्यक्तित्व को सुखद व शांति प्रद बनाने हेतु अत्यंत आवश्यक हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

23

‘‘क्या है-पुण्य पाप?’’

जिस क्रिया, वचन व मनोविचार से आत्म प्रदेशों में भय का संचार हो, अथवा स्वयं में शर्म महसूस हो,कार्य व उसके प्रतिफल में शंका हो, अथवा जिसे छुपाना पड़े, प्रकट करने का साहस न हो, ऐसा कार्य पाप कहलाता है तथा जिस क्रिया, वचन व मनोविकार से निर्भयता की अंतरंग में अनुभूति हो, आनन्द व उल्लास प्रकट हो, निश्चयात्मक हो,नीतिसुयुक्त हो, प्रभावना का सुसमर्थ कारण हो वह पुण्य कहलाता है, तथा जिसमें कोई विकल्प पैदा न हो, बुद्धि पूर्वक न तो शरीर की क्रिया होती है, न ही वचन प्रवृत्ति व इतना ही नहीं मनोविकल्प भी जहाँ शेष नहीं रहते, ऐसी शुद्ध प्रवृत्ति संवर व निर्जरा तत्त्व को प्राप्त करने का कारण है । जो कि पुण्य और पाप से रहित है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

24

''तुम क्या बनना चाहते हो? - कौआ या हंस''

संसार में दो प्रकार की प्रवृत्ति वाले मनुष्य होते हैं। एक काकवृत्ति वाले और दूसरे हंसवृत्ति वाले । काकवृत्ति वाले मनुष्य वे होते हैं जो दूसरों के त्याज्य, उच्छिष्ट व जूठे पदार्थों को छीन - छीन कर खाते हैं किन्तु हंसवृत्ति वाले मनुष्य वे होते हैं जो विवेकपूर्वक ग्रहण करते हैं दूसरों को खिलाकर खाते हैं जो दूध और पानी में से दूध को पीते हैं पानी को छोड़ देते हैं अर्थात् गुणों को ग्रहण कर लेते हैं बुराइयों को छोड़ देते हैं । किन्तु जो अच्छाई और बुराई से ऊपर उठ गये हैं जो आत्मा में लीन हैं, परमब्रह्म से साक्षात्कार करने वाले हैं वे परम हंस कहलाते हैं ।वे ही धरती के देवता हैं। जो सकल परिग्रह के त्यागी हैं, विषय - वासनाओं से, कषायों से, पापों से रहित हैं, तत्त्व ज्ञान, आत्म ध्यान व इच्छा निरोध रूप तप में लीन है । सारा जग उन्हें शीश झुकाता है, उन्हें ही ध्याता है। उन परम हंसों के (वीतरागी संतों के) दर्शन हंसों की अपेक्षा लाख गुणा दुर्लभ हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

25

''तुम क्या पी रहे हो ?''

इस दुनियाँ में चार प्रकार के लोग दिखाई देते हैं, एक वे जो इन्द्रिय विषय व कषायों में आकण्ठ डूबे हैं, पापों में लीन हैं बुद्धि - विवेक से हीन हैं दूसरे वे हैं जो अपने पुण्य - पाप का फल भोगते हुए अपने स्वार्थों तक ही सीमित हैं, उन्हें दूसरों के हित व अहित की कोई चिन्ता नहीं है । तीसरे वे हैं जो दूसरों का उपकार करने में संलग्न हैं, पूजा - पाठ, प्रभु आराधना, गुरु उपासना में लीन हैं व्रत - उपवास, दान व सम्मान करने में तत्पर हैं। चतुर्थ प्रकार के मानव वे हैं जो उपकार व अपकार से रहित हैं, पुण्य - पाप के फलों का कोई विकल्प नहीं है जो आत्मा के ध्यान में निरत हैं, परम समाधि को प्राप्त कर चुके हैं, निर्विकल्प ध्यान के द्वारा जिन्होंने आत्मा के अनन्त सुख रूपी खजाने को खोज लिया है। जिन्होनें जन्म - मरण की श्रृंखला से मुक्त होने की कला सीख ली है। प्रथम प्रकार के मानव विष मिश्रित जल पी रहे हैं, द्वितीय प्रकार के मानव कभी खट्टा कभी मीठा, कभी गंदा, कभी निर्मल जल पी रहे हैं । तृतीय प्रकार के मानव सुपाच्य, पौष्टिक घृत व दुग्ध का पान कर रहे हैं एवं चतुर्थ प्रकार के मानव साक्षात् अमृत का रसास्वादन करते हुए तृप्ति को प्राप्त हो रहे हैं ।अब आप अपनी समीक्षा करो । निज की वृत्ति को देखो - कि तुम क्या पी रहे हो?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

26

''मात्र बुद्धि के नहीं - हृदय के सहारे जीओं''

पशु - पक्षी अपना पेट भर जाने पर मस्त होकर नाचते - कूदते हैं, किन्तु इन्सान का पेट भर जाने पर भी वह नाचता - कूदता, हँसता - मुस्कुराता दिखाई नहीं देता क्योंकि मनुष्य पेट के साथ पेटी भी भरना चाहता है । पशु - पक्षी संतोष धारण किये हैं, इंसान तृष्णा से भरा हुआ है। । यद्यपि पशु - पक्षियों के पास इंसान के बराबर बुद्धि नहीं फिर भी वे मस्त हैं, खुश हैं, आपस में प्रेम पूर्वक रह रहे हैं। क्या उनका कम बुद्धिमान होना अच्छा नहीं है, जो उन्हें तृष्णा की जंजीरों से मुक्त किये है। प्रेम,वात्सल्य व संतोष के सुमधुर फलों का आनंद ले रहे हैं। जिस व्यक्ति की बुद्धि ज्यादा काम करती है उसका हृदय उतना ही कम क्रियाशील होता है ।जिसका हृदय ज्यादा क्रियाशील होता है उन्हें बुद्धि की चिन्ता नहीं, मात्र बुद्धि के सहारे जीने वाला खुश मिलना मुश्किल है और हाँ मात्र हृदय के सहारे जीने वाला बुद्धिमानों की अपेक्षा ज्यादा सुखी होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

27

''परिग्रह है दुःख का खजाना''

जिस व्यक्ति के पास जितना अधिक परिग्रह होता है वह व्यक्ति उतना ही अधिक दुःखी होता है तथा जिस व्यक्ति के पास जितना कम परिग्रह होता है वह उतना ही अधिक सुखी होता है । परिग्रह का आशय मात्र बाह्य वस्तुओं के संग्रह से नहीं है। एक निर्धन भिखारी भी बहुत परिग्रहवान् हो सकता है तथा एक वैभव सम्पन्न अमीर भी अल्पपरिग्रही हो सकता है। परिग्रह का आशय है अंतरंग की पकड़/मूर्च्छा भाव,अंतरंग का लोभ या सर्वस्व ग्रहण करने वाली तृष्णा । जिसकी तृष्णा जितनी अधिक है वह उतना ही अधिक दुःखी होता है। तृष्णा को छोड़ो और सुखी हो जाओ । शायद पशु - पक्षियों में तृष्णा कम है इसलिए वे मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुखी दिखाई देते हैं। तुम भी अपनी तृष्णा, लोभ व परिग्रह को कम करो, फिर देखो तुम्हें दुःखी कौन कर सकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

28

''सुख है प्राकृतिक स्वरूप को पाने में''

मानव का चित्त काँच की तरह होता है, काँच के निकट जैसा वर्ण होता है काँच भी उसी वर्ण का दिखाई देता है । लाल वस्त्र से लाल, श्याम वस्तु से श्याम, हरियाली से हरा, पीले पुष्प से पीला, नीले आकाश से नीला, सफेद दूध के साथ सफेद दिखाई देता है। ऐसे ही मानव का चित्त जैसी संगति करता है वैसा ही हो जाता है, भोगी के साथ भोगी, रोगी के साथ रोगी, योगी के साथ योगी । जैसे वातावरण में रहता है चित्त भी वैसा ही हो जाता है, विकृति में रहने वालों का चित्त कभी प्राकृतिक नहीं हो सकता । अतः अपने प्राकृतिक रूप को पाना है व सहज आनन्द व सुख को पाना है तो प्रकृति के साथ मिलकर रहो, खुले आकाश में प्रकृति की गोद में प्राकृतिक बने रहो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

29

''मुक्ति सोपान''

जीवन में प्रतिक्रमण, प्रायश्चित व प्रत्याख्यान करना अत्यन्त आवश्यक है, पाप प्राणी को पतित करने वाले होते हैं, पापी व्यक्ति पुण्य की महिमा को नहीं समझ पाता, पाप पराधीनता की पंक्ति में बांधने वाला है। संसारी प्राणी से अनादि कालीन पापों के संस्कार होने के कारण पाप होना संभव है, इसलिए आसन्न भव्य जीवों को पापों का परिहार करने के लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए, मेरा पाप मिथ्या हो "तस्स मिच्छा मे दुक्कडं" अतीत के पापों को नष्ट करने का उपक्रम तथा वर्तमान के पापों का त्याग करने हेतु - प्रायश्चित अनुपालन करना । प्रायश्चित अतीत के पापों का शोधक है, भविष्य में पाप न हो इसलिए सर्व सावद्य का त्याग अनिवार्य है। बिना प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान व प्रायश्चित के कोई भी प्राणी सिद्ध नहीं बन सकता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

30

''आत्म शोधन का हेतु''

क्रोध रूपी अग्नि संसार की सबसे भयानक अग्नि है, यह जहाँ प्रकट होती है उसे जलाती है, जिस पर प्रक्षेपण की जाती है उसे भी जलाती है, देखने वालों को भी झुलसाती है। विवेक के ईंधन को जलाकर ही क्रोधाग्नि उत्पन्न होती है, जब तक व्यक्ति होश में होता है तब तक क्रोध की अग्नि की उत्पत्ति संभव नहीं है, जहाँ क्रोध है वहाँ न तो आत्म बोध है और न ही आत्मशोध है क्रोध में तो केवल विरोध ही विरोध है, गुण निरोध है। क्रोध की अग्नि अहंकार के कोयले उत्पन्न करती है, क्रोध की अग्नि से निकलने वाला मायाचारी का काला धुँआ दृष्टि को नष्ट कर देता है, महाक्रोधी, महालोभी ही हो सकता है, संतोषी व्यक्ति को प्रायः कर क्रोध नहीं आता है। बोध, प्रबोध, आत्मशोध की प्राप्ति हेतु इन्द्रिय निरोध,अशांति व कलह के निरोध के लिए क्रोध का अभाव आवश्यक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

31

''अहंकार का अंधकार''

अहंकार का अंधकार सबसे ज्यादा भयानक व खतरनाक होता है यह पाषाण की तरह कठोर होता है, प्राणी को प्राणी से तोड़ने वाला होता है, पत्थर के साथ पत्थर के रहने से पत्थर के टुकड़े - टुकड़े हो जाते हैं, पाषाण हृदय वाले खुद भी अनेक बार टूटते हैं तथा दूसरों को भी अनेक बार तोड़ते हैं किंतु जल में जल गिरता है तो दोनों आपस में मिल जाते हैं, पंथ,आम्नाय, संस्थायें, सम्प्रदायों का बनना अहंकार का प्रतीक है, जो व्यक्ति दूसरों के पीछे चलने में असमर्थ होता है वह एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर देता है। अहंकार - कलह, क्लेश व वैमनस्यता का प्रतीक होता है वह शक्ति का बँटवारा कर देता है। विनय और वात्सल्य जोड़ने वाले हैं, ये शक्ति संचय करने वाली महामानवीय अनुपम शक्ति है, गुण - ग्राहक चुम्बक है। प्रज्ञ पुरुष वही है जो विनय व वात्सल्य से युक्त व अहंकार से पूर्ण रिक्त है, प्रज्ञ पुरुष का हृदय नवनीत या निर्मल नीर की तरह होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

32

''धर्म का मर्म''

धर्म का अर्थ है "जो जीवन में धारण किया जाये" जो शाश्वत सुख व शांति का एकमात्र उपाय है, जो प्रत्येक प्राणी का अंतिम स्वभाव है, व्यवहार धर्म लौकिक व भौतिक सुख देने वाला होता है, धर्म सदैव अपने आप में पूर्ण होता है, यह दुःखों का, कर्मों का, संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है, इहलोक व परलोक में शाश्वत, स्वाभाविक सुख, शांति, ज्ञान, दर्शन एवं शक्ति का कारण है। लोक में चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष, कामधेनु, पारसमणि आदि को सुख का कारण मानते हैं जबकि धर्म ही चिंतामणि है, धर्म ही सच्चा कल्पवृक्ष है, धर्म ही सच्ची कामधेनु है तथा धर्म सर्वकाल, सर्वक्षेत्रों में सर्व प्राणियों को सुख व शांति देने वाला है। यह मिश्री की तरह मीठा,जल की तरह शीतल, दुग्ध की तरह पौष्टिक, आकाशवत् अवगाहन देने वाला, पृथ्वी की तरह स्थान देने में समर्थ सूर्य - चन्द्रमा की तरह सबको प्रकाश देने वाला है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

33

''अर्थी नहीं परमार्थी''

जो अर्थ (धन) के लिए जीवन जीता है उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है, कदर्थनीय बन जाता है, जीवन की सार्थकता पारमार्थिक जीवन जीने में है, यथार्थ के धरातल पर ही परमार्थ के बीज अंकुरित हो पाते हैं,या सत्य से साक्षात्कार करने पर ही यथातथ्य स्वरूप की सम्प्राप्ति हो सकती है, वह सत्य सत्संग से मिलता है, सत्य का संग करना अथवा सत्य को अपना अंग बनाना यह सत्संग/साधु सानिध्य में संभव है । बिना सत्संग के आध्यात्मिक ज्ञान व निर्विकल्प ध्यान की भूमिका की प्राप्ति संभव नहीं है। अर्थी बनो किन्तु अर्थ के नहीं, परमअर्थ के, धर्म के, ज्ञान के, स्वभाव के/ जो अर्थ (धन) का अर्थी होता है उसकी अर्थी (शवयात्रा) निकलती है, परमार्थी का विमान शिवयात्रा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

34

''स्वच्छता कहाँ की''

आइना साफ होगा तो प्रतिबिम्ब भी साफ होगा, गंदे आइने में साफ चेहरा भी गंदा ही दिखेगा तथा साफ आइने में गंदा चेहरा गंदा दिखेगा, आइने को घिसने से चेहरे की गंदगी दूर नहीं होगी और न ही चेहरा घिसने से आइना साफ होगा । दोनों का साफ होना आवश्यक है। हमारा चित्त यदि साफ और स्वच्छ है यानि पवित्र है तो हमारा जीवन भी साफ व स्वच्छ दिखायी दे सकेगा, चित्त की मलिनता जीवन शैली को भी मलिन कर देती है। बाह्य चर्या यदि साफ दिखाई दे रही है और अंदर में मलिनता है तो बाह्य स्वच्छता चित्त में आनंद नहीं दे सकती, लोकप्रिय भले ही बना दे किन्तु वह आत्मप्रिय नहीं बना सकेगी । चित्त पवित्रता चित्त प्रियता की कारण है, मलिन चित्त वाले पुरुषों की चर्या में से भी दुर्भावना की दुर्गंध ही निसृत होती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

35

''दुःखों से मुक्ति का कारण - संयम''

संयम या चारित्र के बिना आत्मा का कल्याण संभव नहीं है। सदाचार, व्रताचरण एवं संयम दुःखों से मुक्ति का साक्षात् कारण है। भारतीय संस्कृति में साधु, संत, महात्मा ही पूज्य हैं, क्योंकि सदाचरण की पूज्यता से व्यक्ति भी पूज्यावस्था को प्राप्त हो जाता है। यूँ तो भारत वर्ष तथा विदेशों में भी बड़े - बड़े ज्ञानी, शास्त्री, विद्वान् व पंडित हैं, उनके ज्ञान का कोई सानी नहीं किंतु उनके पास सदाचार नाम की कोई चीज नहीं है। आचरण विहीन ज्ञान निरर्थक है कदाचारी के शास्त्र ज्ञान को तो मनीषी व संत पुरुष अभिशाप कहते हैं। कोई रोगी यदि औषधि का सेवन न करे तो उसका औषधि या रोग सम्बंधी कोई भी ज्ञान या जानकारी व्यर्थ है, उसी प्रकार दुःखों से मुक्ति के उपाय जानते हुए भी उसका आचरण न करे तो उसका वह ज्ञान या जानकारी व्यर्थ है। कोरी जानकारी व्यक्ति को अहंकारी बनाती है,सदाचार प्राणी को विनम्र बनाता है, अहंकारी का नियम से पतन होता है, विनम्रता परम्परा से मोक्ष का द्वार है, साक्षात् स्वर्गीय सुखों को देने वाली है।

36

''जिन्हें मानते हो उनकी मानो तो सही''

जिन महापुरुषों को आप और हम परमात्मा/ भगवान/ ईश्वर/ सर्वज्ञ/ अर्हंत/ भगवंत/ देवाधिदेव मानते हैं, जिनकी पूजा करते हैं, भक्ति, अर्चना, उपासना, वंदना व प्रणाम करते हैं, जिनकी चर्या की चर्चा करके भी सुख शांति का अनुभव करते हैं, जिनकी तस्वीर हृदय में बसाकर परम सौभाग्य का अनुभव करते हैं, जिन्हें अपने प्राणों से ज्यादा महत्व देते हैं। जो त्याग, संयम व तपस्या के सुमेरु पर्वत हैं, जो मुक्ति के कर्ता व सर्व दुःखहर्ता हैं जिन्होंने संसार, शरीर व भोगों से विरक्त होकर गृहवास का त्याग किया, उपवास कर, वन में वास कर, साधना में आध्यात्म विद्या में विश्वास किया और अपनी आत्मा को परम शुद्ध बनाकर संसार सागर के पार पहुँच गये, उन्हें आप मानते तो है किंतु उनकी बात नहीं मानते । उन्होंने बुराई के त्याग की आज्ञा दी है, उन्होंने पाप के त्याग का, अभक्ष्य भक्षण के त्याग का, विषय - कषायों के पोषण के त्याग का उपदेश दिया है, धर्म सेवा,प्राणी सेवा, संयम साधना की बात कही उसे क्यों भूल जाते हो?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

37

''संत सबके हैं - सब संत के''

जिस प्रकार चंद्रमा अपनी चांदनी अमीर - गरीब, विद्वान् - मूर्ख, सुन्दर - असुन्दर (कुरूप) के भेद किये बिना सभी पर बिखेरता है, सूर्य अपनी धूप सभी को देता है, वायु सबके लिए जीवन प्रदाता है, पृथ्वी बिना भेदभाव के सभी को रहने का स्थान देती है, मेघ सबके कल्याण के लिए बरसते हैं, वृक्ष सबके हित के लिए फलते हैं, आकाश सबके लिए है इसी प्रकार - संत, शास्त्र, शास्त्रा/सर्वज्ञ, सरिता, सागर, सड़क, सत्य,समता, संतोष आदि गुण भी सभी के लिए होते हैं। यथार्थ संत कभी किसी एक का नहीं होता वह सबका होता है, प्राणी मात्र का होता है और सब उस संत के होते हैं, वह किसी प्राणी विशेष, वर्ग विशेष, सम्प्रदाय विशेष, संस्था विशेष व आम्नाय विशेष का नहीं है, संत की विशेषता को बांधने का अर्थ है उसके अस्तित्व को बोना कर देना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

38

''प्रकृति साम्यत्व''

संसार में जितने भी पशु - पक्षी हैं उन सभी में आकृति वैषम्य पाया जाता है किंतु साम्यत्व का गुण विद्यमान है। मानव में आकृति साम्यत्व तो देखने में आता है किंतु प्रकृति वैषम्यता ज्यों कि त्यों बनी रहती है। आकृति अच्छी होते हुए भी यदि प्रकृति अच्छी नहीं है तो उसे अच्छा नहीं कह सकते । तथा प्रकृति अच्छी होने पर आकृति अच्छी नहीं फिर भी उसे बुरा नहीं कह सकते। । मानवाकार रूप प्राप्त करने मात्र से मनुजत्व की पूर्णता नहीं हो जाती है। उसी मानव को मानव कहना चाहिए जिनमें मानवता हो, आदमीयता रहित आदमी कहाँ? मनुजता से रहित मनुज का अस्तित्व कहाँ? इंसानियत युक्त ही इंसान कहा जा सकता है, अन्यथा मानवाकार कीड़े - मकोड़े को इंसान कहना हास्यास्पद ही है, इंसान को इंसानियत के साथ ही जीना चाहिए, आकृति से नहीं प्रकृति से भी मानव बनना चाहिए तभी जीवन सार्थक होगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

39

''स्वत्व ही अंक है''

जीवन में सबसे अधिक मूल्यवान व महत्वपूर्ण चीज है स्वयं के अस्तित्व को पूरी तरह से प्राप्त कर लेना । स्वयं के स्वत्व को प्राप्त किये बिना सम्पूर्ण विश्व के वैभव को प्राप्त कर लेना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार गणित की पुस्तकों में अंकों से रहित संख्या का होना अर्थात् सर्वत्र शून्य ही शून्य होना, जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल, घनमूल, व्यास, अनुपात, औसत इत्यादि सब कुछ है किंतु अंक एक भी नहीं तो वह सम्पूर्ण पुस्तक ही निरर्थक है। जीवन में स्वयं के अस्तित्व (स्वत्व) बिना स्व द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव को पाये बिना सुन्दर निरोगी शरीर, बाह्य भौतिक वैभव, उच्च कुल, सत्ता,प्रतिष्ठा, सेवक,अपरिमित राज्य निस्सार है अतः अपने स्वत्व को पाने के लिए समत्व को प्राप्त करने का प्रयास करो वह समत्व भी आत्म बोधत्व को पाने के लिए जरूरी है, आत्म बोधत्व व समत्व ही निजत्व में जिनत्व को प्रकट करने वाला है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

40

''नग्नता प्राकृतिक है''

दिगम्बर संत की नग्नता विकार विहीन छोटे बालक की तरह है वह प्राकृतिक रूप की प्रतीक है बुद्धि के विकार की नहीं, बुद्धि के विकृत होने पर व्यक्ति पर को ओढ़ता है, दूसरों को पकड़ता है, विषयों के जाल में जकड़ता है, प्राकृतिक दशा आत्मा की परम व चरम दशा है, प्राकृतिक रूप ही परमात्मा का या उच्चकोटि के (परमात्मा के निकट पहुँचे) महात्मा का रूप है। जो विषय कषाय, आरंभ, परिग्रह में लीन है, हिंसा, झूठ, चोरी में मस्त है, क्रोध,मान, माया व लोभ के वशीभूत है वह प्राकृतिक रूप का धारी नहीं बन सकता । जिसके मन में विकार है, अभिलाषायें हैं, दुःखों का दरिया जिसे तैरना है वह प्राकृतिक रूप धारण नहीं कर सकते, प्राकृतिक रूप तो बनावट, सजावट, मिलावट, दिखावट, कड़वाहट और गिरावट से परे है, यह सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनिक पूज्य परमात्मा का प्रतीक है देखो ! सागर, नदी, पर्वत, पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, गृह, नक्षत्र, तारे, वृक्ष, पशु - पक्षी सभी तो नग्न हैं, प्रकृति नग्न है अपने में मग्न है, परहित में संलग्न है, दिगम्बर संत भी धरती के देवता हैं विकृतियों से परे प्राकृतिक दशा के अधिकारी हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

41

''सम्पूर्ण धर्मों का प्राण''

अहिंसा विश्व के सम्पूर्ण धर्मों का प्राण है,बिना अहिंसा के किसी भी धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती है, अहिंसा ही जगत जननी है, अहिंसा ही प्राणी मात्र के विश्वास का प्रतीक है, अहिंसा ही निर्भीकता, निशंकता, निष्कांक्षता व निर्विचिकित्सता का प्रतीक है, अहिंसा के मायने केवल जीव वध का त्याग नहीं है बल्कि मन, वचन व कर्म से ऐसा कोई कृत्य नहीं करना जिससे स्वयं की आत्मा को पर की आत्मा को कष्ट हो । अहिंसा त्रैकालिक, विश्वव्यापी, सर्वजन हितकारी व सर्वजन सुखकारी सर्वोत्तम मार्ग है। दया, करुणा, रहम, कृपादृष्टि, प्रेम चिदानंद सब इसके ही पर्यायवाची रूप हैं अहिंसा के अमृत सिंचन से ही सुख - शांति के वृक्ष पुष्पित - पल्लवित व फलित होते हैं । अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही परम ज्ञान है, अहिंसा ही परम तप है, अहिंसा ही परम ध्यान है, अहिंसा ही परम ज्योति है, अहिंसा ही परम मैत्री है, अहिंसा ही परम प्रेम है, अहिंसा ही संतत्व है, इतना ही नहीं अहिंसा परमात्मा का दूसरा रूप है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

42

''एक रथ के दो पहिये''

धर्म और विज्ञान जीवन रूपी रथ के दो पहिये हैं, रथ में दोनों पहियों का समान महत्व है दोनों में से किसी के भी महत्व को कम नहीं कहा जा सकता, जिस प्रकार नदी के दोनों किनारे नदी के प्रवाह के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, पक्षी के पंख उड़ने में समान रूप से सहकारी हैं, विद्युत के दोनों तार विद्युत प्रवाह के लिए समान रूप से सहयोगी हैं,मानव के दोनों पग चलने में समान रूप से सहकारी हैं, जिस प्रकार आत्मा में दो चेतना (ज्ञान चेतना, दर्शन चेतना) समान रूप से प्राणी/ जीव को जीवंतता देने में निमित्त हैं उसी प्रकार समीचीन जीवन यापन के लिए विज्ञान और धर्म दोनों जरूरी है । विज्ञान शारीरिक सुख सुविधाऐं व अनुकूलता देता है, भौतिक सुख देता है तो धर्म चेतना में सुख - शांति की शाश्वत स्थापना करता है, जन्म - मरण के दुःखों से मुक्ति देने वाला है। जिस प्रकार समवशरण में व्याप्त विभूति तीर्थंकर प्रभु की बाह्य लक्ष्मी है और अनंत - चतुष्टय अंतरंग लक्ष्मी है उसी प्रकार विज्ञान द्वारा प्रदत्त सामग्री मानव की भौतिक सम्पत्ति है और धर्म द्वारा प्रदत्त निधि है - शाश्वत अलौकिक सम्पदा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

43

''सत्य है शाश्वत व सार्वभौमिक''

सत्य सम्पूर्ण संसार का आधार है, सत्य शाश्वत दशा है वह अनादि - निधन है, अकृत्रिम है वह क्षण ध्वंसी नहीं है, यह तो सदैव जीवंतता मुक्त ही रहता है, यह जन्म - जरा - मृत्यु से रहित है, यह कभी किसी के पराधीन नहीं होता, यह बंधन विहीन प्राकृतिक है, यह कभी विकृत या विपरीत परिणमन को स्वीकार नहीं करता, इसकी सत्ता सार्वकालिक, सार्वभौमिक व सार्वजनिक है ।यह ओस की बिंदु,कपूर की डली, इन्द्र धनुष की या गगन गामिनी दामिनि या खद्योत के प्रकाश या जल बिंदु बुदबुदे या स्वप्न की तरह नहीं है यह तो उसी प्रकार शाश्वत है जिस प्रकार जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता, वायु में चंचलता, जीव में जीवंतता, शक्कर में मिठास, नमक में खारापन,दूध में घृतत्व, घृत में स्निग्धता,आकाश में शून्यता, धर्म हृदय में गति हेतुत्व, अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व,काल द्रव्य में परिणमनत्व शाश्वत है। इस सत्य से जो पूर्ण अनुभूत हो जाता है वह शाश्वत स्वरूप को पा जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

44

''धुला दूध का कौन है?''

संसार में सबसे ज्यादा सरल काम है दूसरों की निंदा एवं अपनी प्रशंसा करना, यह कृत्य नीच गोत्र का, असाता वेदनीय का, ज्ञानावरणी व दर्शनावरणी कर्म का आस्रव करने वाला है । आत्म प्रशंसा एवं पर निंदा अशुभ नाम कर्म, अशुभ आयु तथा मोहनीय कर्म के बंध में कारण है। दीर्घ संसारी प्राणी से दूसरों की प्रशंसा व आत्म निंदा का कार्य नहीं हो सकता । आसन्न भव्य, सम्यग्दृष्टि तथा पुण्यात्मा जीव सदैव आत्म समीक्षा करता है, अपने दोषों पर बार - बार दृष्टि डालता है, जब तक उसे छोड़ नहीं देता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता, धर्मात्मा प्राणियों को दूसरों के गुणानुवाद करने से परमानंद की अनुभूति होती है। कौन कितना अपराधी, दोषी, अवगुणी या हीनात्मा है यह हमारा विषय नहीं हो, अपितु कौन कितना अधिक गुणवान्, धर्मात्मा, सरल - सहज, परोपकारी, क्षमाशील व विनम्र है यह हमारे चिंतन का विषय होना चाहिए, किसी ने कहा भी है -

धुला दूध का कौन है, किसके पग नहीं पंक।
कुछ गिरगिट के बाप हैं, कुछ बिच्छु के डंक ॥

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

45

''मानवता से युक्त मानव''

मानव जीवन प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है, अनेक जन्मों में एक बार मानव जीवन मिल पाता है, जिस प्रकार अंधे व्यक्ति के हाथ में किसी चमगादड़ का आ जाना कठिन है, लंगड़े पुरुष द्वारा पर्वत की चोटी पर चढ़ पाना दुर्लभ है, निर्धन के द्वारा महादान दे पाना दुर्लभ है, मिथ्यादृष्टि के द्वारा प्रभु भक्ति दुर्लभ है, ईर्ष्यालु के द्वारा किसी की गुण प्रशंसा कर पाना दुर्लभ है, जल बिंदु के द्वारा पाषाण खण्ड को भेद पाना जितना दुर्लभ है, उतना ही दुर्लभ मानव जीवन का प्राप्त करना है। मानवाकार या मनुष्य आयु कर्म के उदय को भोगने वाले सभी प्राणी तब तक सही मायने में मानव नहीं कहे जा सकते जब तक वे मानवीय गुणों से युक्त नहीं है। अहिंसा, करुणा, प्रेम, वात्सल्य, दया,परोपकार, दान, ईमानदारी, संयम, त्याग, ज्ञान, ध्यान इत्यादि गुण मानव को मानवता प्रदान करने वाले होते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

46

''अमीर कौन?''

संसार में सबसे ज्यादा अमीर/धनी व्यक्ति वही है जिसके पास दया, प्रभु भक्ति, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम,तप, तीर्थयात्रा,जप, पात्र दान इत्यादि गुण हैं। जो व्यक्ति गुण रिक्त व दोषों का आलय है वह संसार का सबसे निर्धन व्यक्ति है। अहर्निश प्राणी मात्र के प्रति करुणा बरसाने से, दया करने से, प्रभु परमात्मा की पूजा, भक्ति, स्तुति,वंदना करने से, निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा वैय्यावृत्ति उपासना करने से, इन्द्रिय संयम व प्राणी संयम करने से, मन - वचन- काय पर नियंत्रण करने से, इच्छाओं का नियंत्रण करने से, तीर्थक्षेत्र,अतिशय क्षेत्र व सिद्ध क्षेत्रों की वंदना करने से, महामंत्रादि का जाप लगाने से, सत्पात्रों को दान देने से भौतिक एवं आध्यात्मिक धन की वृद्धि होती है ऐसा व्यक्ति ही विश्व सम्राट, आत्मजेता व त्रिलोकपति बन जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

47

''सर्वोत्कृष्ट सन्यासी/ धरती के देवता''

संसार में दिगम्बर संत ही एक ऐसे सन्यासी हैं जिनका विराग और त्याग सर्वोत्कृष्ट होता है, जिन्हें न खाने - पीने की चिंता होती है न रहने की, न वस्त्र की इच्छा है न अस्त्र - शस्त्र की, जो गृह, परिग्रह, निग्रह - संग्रह की लौकिक नीतियों से भी विरक्त रहते हैं, अंतरंग बहिरंग दोनों प्रकार की ग्रंथियों (गाँठों) परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ होते हैं, इनके आने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती इसलिए ये अतिथि कहलाते हैं, ये आत्मध्यान में निरत मस्त फकीर होते हैं, स्त्री, पुरुष, मित्र, कुटुम्बी जन सबके त्यागी, विषय - कषाय, कृषि आदि आरंभ से रहित,संसार शरीर, भोगों से विरक्त, ज्ञान, संयम, तप, ध्यान में लीन तत्त्ववेत्ता, आध्यात्मिक रसिक होते हैं। वे संसार के हेतुभूत वित्त को नहीं जोड़ते अपितु संसार भ्रमण से बचने के लिए तथा मोक्ष की ओर अपने चित्त को मोड़ते हैं, मोह की ग्रन्थि को तोड़ कर परमात्मा दशा से अपनी आत्म परणति को जोड़ते हैं, धन्य हैं ये धरती के देवता निर्ग्रन्थ मुनीश्वर, स्व पर के परम उपकारी, निस्वार्थ,दयालु, करुणा मूर्ति, संत के भेष में भगवान ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

48

''आत्म समृद्धि का मार्ग''

जीवन में ऋद्धि - सिद्धि, गुणवृद्धि एवं आत्म समृद्धि की उपलब्धि धर्म के द्वारा ही संभव है बिना धर्म के जीवन में सुख शांति की बहार नहीं आती और न ही दुःखों का कोहरा ही छटता है। धर्म आत्म प्रदेशों में परम आह्लाद को प्रकट करने वाला है धर्म ही यश, हर्ष व आत्मा को प्रकृष्टता का प्रदाता है। धर्म चतुर्गति भ्रमण का नाशक है,धर्म सर्वज्ञता, सर्वदायित्व व अनन्त शक्ति को प्रकट करने वाला है, धर्म आत्मा को शाश्वत सुख की दशा देने वाला है, धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म ही चिंतामणि रत्न है, धर्म ही कामधेनु है, धर्म ही कामकुंभ है, धर्म ही कल्पलता है, धर्म ही माता- पिता की तरह संरक्षक है, धर्म ही परम मित्र है, धर्म ही परम औषधि है, धर्म ही परम प्रकाश है, धर्म ही आत्मा का परमोत्कृष्ट भोजन है, धर्म ही चिरशांति है, धर्म ही परम अर्थ है, धर्म ही परम नियति है, धर्म ही प्रत्येक प्राणी की शुद्ध प्रकृति है। धर्म की उपलब्धि जीवन की अनुपम व सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

49

''तरण - तारण''

दर्शन विशुद्धि का आशय है सम्यग्दर्शन का अष्ट अंग, अष्ट गुण सहित तथा पच्चीस दोषों से रहित होकर पालन करना । जब सम्यक् दृष्टि आत्म कल्याण के साथ प्राणी मात्र के कल्याण के लिए तत्पर रहता है तब वह दर्शन विशुद्धि भावना से युक्त होता है प्राणी मात्र के कल्याण की भावना अर्थात् करुणा व दया की उत्कृष्ट दशा, दर्शन विशुद्धि की प्रतीक है। संक्लेशतम दया हर व्यक्ति में असंभव है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध असंख्यात् भव्य जीवों में एकाध (अत्यल्प) जीव के ही होता है। सिंधु के मध्य बिंदु के समान तीर्थंकर महापुरुष होते हैं। एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र तथा ऐरावत क्षेत्र में मात्र चौबीस महापुरुष ही ऐसे हो सकते हैं, वे महापुरुष सम्यग्दृष्टि होकर आत्मकल्याण के पूर्व परकल्याणानुरत हुए, अतः वे धन्य हैं । यदि वे तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं करते तो ये भी संभव था कि वे उस भव से भी मोक्ष जा सकते थे । आत्मा के शाश्वत वैभव का अवलोकन करके भी दूसरों को उस वैभव से परिचय कराना या उसकी प्राप्ति में निमित्त बनना अथवा स्वयं क्षुधातुर होने पर तथा भोजन मिल जाने पर भी स्वयं खाने के पूर्व दूसरों को भोजन के लिए प्रेरित करना तीर्थंकर जैसे महापुरुष के द्वारा ही विधेय सुकृत है। अन्य सामान्य प्राणी के द्वारा ऐसा कार्य कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है, दुष्कर है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

50

''सहेली मुक्ति दुल्हन की''

विनय आत्मा का एक ऐसा अनुपम गुण है जिसमें निस्सीम गुण ग्राहक गुरुत्वाकर्षण शक्ति का संचय है, विनय मोक्ष मार्ग का आदि सोपान है, विनय गुण से युक्त पुरुष क्रोध,मान, छल - कपट, लोभ, मोह आदि विकृत भावों को नष्ट करने में समर्थ हो जाता है, विनय रूपी कुठार अहंकार के वृक्ष को समूल नष्ट कर देता है, अहंकार, औधत्यता, मदोन्मत्तता का तमस विनय की दिव्य ज्योति से आपोआप (स्वतः ही) तिरोहित हो जाता है। जीवन में जो व्यक्ति धन से सम्पन्न हैं वे वास्तव में सम्पन्न नहीं विपन्न ही हैं, विपन्नावस्था खेद - खिन्नता का कारण है। विनय गुण की अहर्निश प्रवर्द्धन शीलता जीवन की समग्र सम्पन्नता की मूल है।विनयी पुरुष ऋजुता, निर्लोभता, सत्यता, शुचिता एवं संयम की दशा को भी प्रकट करने में समर्थ होता है । विनय में शक्ति का केन्द्रीकरण है और अविनय में बिखराव। विनय शत्रु को मित्र बनाने की अनुपम कला है। विनय से सम्पन्न व्यक्ति स्व - पर कल्याण की भावना भाकर त्रिलोक पूज्य, विश्ववंद्य तीर्थंकर की अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

51

''कहानी रिश्तों की''

रिश्ते कच्चे धागों की तरह होते हैं उन्हें ज्यादा नहीं खींच सकते क्योंकि ज्यादा खींचने से वे टूट जाते हैं उन्हें स्नेह, आर्द्रता एवं स्निग्धता का बल देने से मजबूत होते हैं। अथवा रिश्ते पक्षी के बच्चों की तरह नाजुक होते हैं उन्हें यदि कसकर पकड़ लिया तो घायल हो जायेंगे और थोड़ा शिथिल कर दिया तो उड़ जायेंगे इसलिए रिश्तों को निभाने के लिए झरनों की तरह निरंतर झरते रहो, झरना निरंतर बहे, ज्यादा पानी हो गया तो नदी बन जायेगी, झरना, न रहेगा । पानी कम आयेगा तो कहलायेगा ।दूसरी बात यह है कि रिश्तो में कभी - कभी खट - पट भी हो जाती है, गलतियाँ भी होती हैं, चार बर्तन होंगे तो खटकने की आवाज भी आयेगी, आवाज आये अच्छा है किन्तु बर्तन टूटे नहीं टूटते ही अनुपयोगी हो जाता है। जैसे गलती के एक पृष्ठ को फाड़ कर फेंक देना अच्छा है पूरी पुस्तक फेंकना बुद्धिमानी नहीं ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

52

''सिंहासन ही क्यों?''

महापुरुष प्रायः कर सिंहासन पर ही विराजमान होते हैं कोई और आसन उनके लिए नहीं कहा जाता क्या कभी श्वानासन, खरासन, गर्दभासन, भैंसासन, बैलासन आदि आपने सुने हैं? नहीं, सिंह जैसा मनस्वी ही सिंहासन पर बैठता है, किन्तु सिंहासन का अर्थ क्या सिंह पर सवारी करना है यदि तुम ऐसा मानते हो तो तुम भूल कर रहे हो सिंह को पंचानन भी कहते है चार पैर और मुँह होने से प्रत्येक प्राणी के पास पाँच पंचानन हैं वे हैं उसकी इन्द्रियाँ। उन पाँच इन्द्रियों को जीत लेना अपने वश में कर लेना, उनका उन पर बैठना ही सिंहासन पर विराजमान होना है। आओ हमारे साथ इस प्रकार आप भी सिंहासन पर विराजमान हो जाओ धातु, लकड़ी, पाषाण के आसन पर नहीं इन्द्रिय और मन के आसन पर बैठो जिससे आश न रहे, इच्छाजयी बनो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

53

''समाधि कहाँ ?''

समाधि साधना की परम और चरम दशा है, इसको प्राप्त किये बिना व्रत, नियम, संयम, साधना, तपस्या व आत्म ध्यान सब व्यर्थ है। समाधि का अर्थ आत्मा की आत्मा में लीनता है वह आत्मलीनता निर्विकल्प दशा में या शुद्धोपयोग की दशा में ही संभव है। सकल संयमी जब आधि, व्याधि और उपाधि के पार पहुँच जाता है तभी वह समाधि को प्राप्त कर पाता है। समाधि स्वकीय राग - द्वेष व मोह जन्य परिणामों का परित्याग व आत्मानुभव की परम शान्त दशा है किन्तु वह समाधि सबके लिए सिद्ध नहीं हो पाती वह चित्त की सरलता व सहजता के बिना असंभव है उस समाधि की प्राप्ति उसे ही होती है जिसके पास अपनी समस्त जिज्ञासाओं, शंकाओं व शिकायतों का समाधान है। जिसका चित्त समान धी समता भाव से युक्त है वही समाधि को प्राप्त कर सकता है, अन्य नहीं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

54

''संत कौन?''

किसी ने कहा - संत उसे कहते हैं जो अंदर और बाहर दोनों ओर से शांत है,दूसरा बोला नहीं, संत तो वह होता है जो अंतस के तमस को दूर कर दे, तीसरा बोला अरे भाई, संत तो वह होता है जिसने अंतरंग धर्म को प्राप्त कर लिया हो, चतुर्थ व्यक्ति ने कहा अरे ! मेरी भी तो सुनो संत उसे कहते हैं जिसने जीते जी अपने अंत को देख लिया, तभी अगले व्यक्ति ने कहा मेरी दृष्टि में तो जो संसार का अंत करने के लिए कृत संकल्पित है वही संत होता है, जो संसार - शरीर - भोगों से विरक्त अपनी आत्मा में वास करता है वह संत है। किसी ने कहा अरहंत और सामान्य प्राणी के बीच की कड़ी अर्थात् इंसान और भगवान के बीच की सीढ़ी ही संत है तब अन्य किसी ने कहा अरे संत तो वह है जिसकी समस्त इच्छाएँ शांत हो गयीं, कषायें शांत हो गई हों, इन्द्रियाँ शांत हो गयी हों, चित्त विश्रांति में पहुँच गया हो, किसी ने कहा जो भ्रांति से दूर, शांति भरपूर,आत्मशांति का नूर, शिवत्व प्राप्ति की क्रांति करने वाले कांतिशूर है वही संत है। सभी की परिभाषाऐं सुनकर मेरे मन ने कहा ये सब ठीक कहते हैं, तुम ऐसे ही बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

55

''संकल्प ही कल्प वृक्ष''

संकल्प का वृक्ष जितना मजबूत होगा, सुदृढ़ होगा, उतना ही ज्यादा दीर्घजीवी होगा और फलीभूत होगा । संकल्प की दृढ़ता मंजिल तक पहुँचाने में गतिशील घोड़े की तरह है। संकल्प की मिठास का स्वाद कार्य के आरंभ से ही आना शुरु हो जाता है, संकल्प की सुदृढ़ नींव पर ही कार्य रूपी महल का सुदृढ़ निर्माण किया जाना संभव है। किन्तु शंका रूपी विकल्प का चूहा संकल्प रूपी वृक्ष की जड़ों को खोखला कर देता है। आकांक्षा रूपी विकल्प, संकल्प रूपी भवन की नींव में नौना बनकर पूरे महल को भी धराशाही कर सकता है।संयम रूपी विकल्प का रोग वायुगामी धावक अश्व को भी भूमिशाही कर सकता है। संकल्प सुमेरू की तरह सुदृढ़ हो, आकाश की तरह निर्विकार हो, योद्धा की तरह निर्भीक हो, चातक ही तरह निःशंकित हो, नदी की तरह निरन्तर लक्ष्य के प्रति गतिशील हो तभी वह संकल्प कल्पवृक्ष की तरह फलवान् हो सकता है।संकल्प इच्छापूर्ण करने वाला वरदान माना जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

56

''ये पड़ाव है आवास नहीं''

घंटी वह है जो हर घण्टे या हर घड़ी बजती है, यह घण्टी यमराज के घण्टे की याद दिलाती रहती है, घंटी कहती है तुम्हारी आयु प्रतिक्षण घट रही है, जिस प्रकार घड़े में रखा हुआ पानी एक - एक बूंद करके उसके छेद से रिस रहा है उसी प्रकार आयु रूपी घट में से एक - एक श्वाँस करके जीवन रिस रहा है, घट रहा है। यमराज पूरा घण्टा बजाये उसके पहले सावधान होजा तुझे कोई खींच कर न ले जाये, तू स्वयं आगे चलने को तैयार रह, यह तेरा स्थायी निवास नहीं एक पड़ाव है। पड़ाव पर पड़ कर मत रहो, आगे चलो, इस पड़ाव पर और पीछे वाले आकर पड़ाव डालेंगे । तू जायेगा तब वे आयेंगे यदि आगे वाले नहीं जाते तो तू यहाँ कैसे ठहरता अतः आगे बढ़ तभी मंजिल मिलेगी, देख घण्टा फिर बज गया, अब फिर बजने वाला है । उठ, जल्दी उठ चल, घबरा मत, मुक्ति श्री बहुत देर से तेरा इंतजार कर रही है । मौत आने से पहले मुक्ति श्री की ओर बढ़ ले ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

57

''जीवन वास्तविक और काल्पनिक''

कोरे कागजों के पृष्ठों पर नन्दन वन बनाना सरल है किन्तु वास्तविकता में वैसा नन्दनवन लगाने में कई वर्षों का समय लगेगा कागजों पर महल बनाने में भले ही कुछ मिनट लगें किन्तु वास्तविक महल बनाने में सैकड़ों वर्ष भी लग सकते हैं, रंगो से पशु - पक्षियों के चित्र बनाने में भले ही मुहूर्त प्रमाण काल लगे किन्तु वास्तविक पशु - पक्षियों का जन्म होने में वर्षो लगेंगे, शब्दों से कविता बनाने में भले ही प्रहर भर का समय लगे किन्तु वास्तविक कविता को चेतना के धरातल पर जन्म लेने में कई युग भी बीत सकते हैं, खुद का चित्र संत या महात्मा या परमात्मा के रूप में बनाने में कुछ ही मिनिट लगेंगे किन्तु वास्तव में खुद को संत, महात्मा या परमात्मा बना पाने में असंख्यातासंख्यात काल भी लग सकता है, आदर्श जीवन की कल्पना करना सरल है किन्तु आदर्श जीवन को वास्तविक रूप में प्रकट कर पाना कितना कठिन है इसकी खुद ही कल्पना करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

58

''उतार दो पुराने''

सज्जन पुरुष जीर्ण - शीर्ण पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं। दीवालों पर टंगे पुराने कलेण्डर को उतारकर उनके स्थान पर नये कलेण्डर टांग दिये जाते हैं, टूटे - फूटे अर्थहीन बर्तनों को अलग करके उनके स्थान पर नये/ नूतन बर्तन खरीद लिये जाते हैं, क्योंकि पुरानी (जीर्ण - शीर्ण) व अर्थहीन वस्तुऐं हमारे उत्साह को नष्ट करती हैं। नूतन व सदुपयोगी वस्तुओं को पाकर मन में उत्साह - उल्लास व उमंग जागृत होता है। जो उन्नति का कारण है । ये आप भली भाँति जानतें हैं फिर आप पुरानी विषय - कषाय व रंजिश की बातों को, दुराग्रहों व हठाग्रहों को क्यों नहीं छोड़ देते? वर्षों पुराने विकार बैर विरोधों को छोड़कर सकारात्मक नूतन विचारों को जन्म दो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

59

''गुड़ न दे सको तो''

सज्जन पुरुष वही है जो सदैव सम्यक् चिंतन करे । हित - मित - प्रिय वचन बोले एवं स्व - पर हितैषी कार्य करे । अपने धन, वस्तु, उपकरण, सामग्री, समय व शक्ति/ सामर्थ्य का समीचीन उपयोग करे। जो व्यक्ति अपने चित्त का पूर्णतया निरोध करने में असमर्थ है उन्हें अपने मन को तत्त्व चिंतन में लगाना चाहिए । जो हित - मित - प्रिय वचन बोलने में असमर्थ हैं उन्हें मिथ्या, कटु, अहितकर वचनों से बचने का प्रयास करना चाहिए और मौन का अभ्यास करना चाहिए ।जो शरीर का पूर्ण निरोध यानि काय गुप्ति के पालन में असमर्थ हैं उन्हें शरीर से सत् कार्य करने चाहिए । यदि यह भी संभव न हो सके तो असत् पाप के कारणभूत कार्यों का परिहार करना चाहिए । गुड़ न दे सको तो गुड़ जैसी बातें तो करो यदि अच्छे कार्य न कर सको तो अच्छी - अच्छी बातें तो करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

60

''दुःख तो इस बात का है''

मुझे दुःख इस बात का नहीं है कि आपने झूठ बोल कर मुझसे अधिक धन ले लिया था धोखा देकर मेरा हिस्सा भी छीन लिया था विश्वास घात करके मुझे दर - दर का भिखारी बना दिया और आप खुद अमीर, शहंशाह बन गये, किन्तु मुझे दुःख तो इस बात है कि आगे आपकी सत्य बात का भी विश्वास न कर सकूँगा । आपकी अच्छाई, गुण - धर्म व सदाचार पर भी मैं हमेशा प्रश्न चिह्न लगाता रहूँगा, आपसी ईमानदारी में भी मुझे सदैव बेईमानी दिखाई देगी,आपने मुझे धोखा देकर मेरे आत्मीय व विश्वस्त मित्रों की संख्या में एक कमी और कर दी तथा मेरे मन में अन्य विश्वस्त मित्रों के प्रति भी शंका का बीज बो दिया । मुझे दुःख इस बात का भी है कि आपने मुझे या मेरे धन को निमित्त बनाकर नारकीय दुःख भोगने वाले पाप का अर्जन कर लिया है। हाय रे! मैं तुम्हारे सुख के कारणभूत सातिशय पुण्य में कारण क्यों नहीं बन सका?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

61

''प्रेरणा बीते क्षणों से''

प्रत्येक दिन नया दिन है, प्रत्येक रात्रि नई रात्रि है, प्रत्येक सप्ताह,माह व वर्ष भी नया है यहाँ तक कि हरक्षण नया क्षण है। बीते क्षण को भूल जाओ, बीते क्षणों के अनुभवों से नई प्रेरणा प्राप्त करो । जो व्यक्ति उत्साह पूर्वक जीवन जीता है वही जीवन्त है, उसका जीवन ही लक्ष्य की ओर प्रवाहमान है उसकी सलाह ही नेक व सुग्राह्य है उसकी राह ही सुराह है। जो आलसी है, भाग्याधीन है या कामचोर है, काम करने की कला, विद्या व कौशल से हीन है तथा वे जो काम न करने के बहाने खोजते हैं उनसे जीवन में स्व पर कल्याण का कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता। उत्साही, उद्यमशील, साहसी, धीर - वीर व गम्भीर व्यक्ति के लिए कुछ भी असाध्य नहीं । श्रद्धा व उत्साह हीन व्यक्ति मृतक तुल्य है, तुम जीवन्त बनो, जीवन्त ही जयवन्त बनता है। किसी ने ठीक ही कहा है

"नई खूबी नई रंगत नये अरमान पैदा कर,
गर तू इंसान है तो, इस खाक के पुतले में भगवान पैदा कर।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

62

''जैसा संग वैसा रंग''

बिल्ली के साथ खेलोगे तो उसके खरोंच/ नाखून के प्रवाह भी तुम्हें सहने ही पड़ेंगे । बिच्छू के बिल में हाथ डालोगे तो उसके विष को सहना ही पड़ेगा, कोयले के व्यापार में हाथ काले तो होंगे ही, प्याज या लहसुन के खेत में निवास करोगे तो उसकी दुर्गन्ध भी सहनी पड़ेगी । संगीतकार या बैंड - बाजे वाली गली में रहोगे तो वाद्य ध्वनि, शोर गुल को सहना ही पड़ेगा, नदी किनारे रहोगे तो उसकी शीतल हवा कलरव ध्वनि व बाढ़ के प्रकोप सहने ही पड़ेंगे । जल में रह कर मगर से बैर बांधना भी तो अच्छा नहीं अतः अच्छी संगति में रहो । छायादार वृक्ष के समीप बिन माँगे छाया मिलेगी पुष्प वाटिका के पास बिना निमंत्रण खुशबू की लहर तुम्हारे समीप आती रहेगी । सत्संगति ही सत्योत्पत्ति का उत्तम क्षेत्र है। खुले आँगन में ही चंद्र चांदनी व सूर्य का प्रकाश पा सकोगे किसी अंधकारमय गहरी गुफा में नहीं ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

63

''फल वैसा ही होगा''

इस बात को कौन नहीं जानता कि जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। नमक के बदले शक्कर नहीं मिलती और ना ही धूप के बदले छाया । दूसरे का दीपक जलाने से तुम्हारे अंधकार का विनाश नहीं विकास ही होगा । सम्मान देकर सम्मान, तिरस्कार करके तिरस्कार ही मिलता है। संसार तो एक कूप की तरह है इसके समीप खड़े होकर जैसा बोलेंगे वही शब्द लौटकर हमारे कर्ण गोचर होंगे । हमें ध्वनि की ही प्रतिध्वनि मिलती है। अपनी - अपनी प्रतिष्ठा की सभी रक्षा करना चाहते हैं दूसरों की इज्जत से खिलवाड़ करने से स्वयं की इज्जत व प्रतिष्ठा भी सुरक्षित न रह सकेगी । अहंकार के अंधकार में भटका हुआ व्यक्ति दूसरों की प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सकता और न ही अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर पाता है। पूज्य पुरुषों के प्रति सम्मान आदर, श्रद्धा व भक्ति का भाव तथा लघु जनों के प्रति स्नेह, वात्सल्य करुणा व क्षमा का व्यवहार किसी भी व्यक्ति के जीवन को स्वर्गीय आनन्द से परिपूरित कर सकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

64

''अनधिकारी चेष्टा''

हमें अपनी बात को विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत करने का अधिकार है। अति आग्रह, दुराग्रह तथा हठाग्रह की श्रेणी में ही आता है। अपनी अच्छी व सच्ची बात को दूसरे से मनवाने का आग्रह भी मानव की अनधिकारी चेष्टा है जो सदैव दुःख,अशांति, कलह व वैमनस्यता का कारण भी बन सकती है। मानने वाला भी स्वतन्त्र है तुम्हारी बात माने या न माने, तुम उस पर अपनी मान्यता को थोपना/ बलात् लादना क्यों चाहते हो? क्या यह संघर्ष, अशांति या कलह की जड़ है? और ध्यान रखो यदि तुम अपनी बात पर अड़े रहोगे और दूसरों की बात को स्वीकार न करोगे तो एक दिन अकेले खड़े रह जाओगे, बहुमत की बाढ़ में बह जाओगे या तूफान में उखड़ जाओगे । दूसरे के विचारों को भी समझने का सम्यक् प्रयत्न करो, जिस रास्ते में तुम चल रहे हो सामने वाला भी चल रहा है तुम अपनी मर्यादा में रहो, सामने वाला अपनी मर्यादा में, तभी दुर्घटना से बच सकते हो । मैं मानता हूँ स्वतन्त्र हो, तुम्हें चलने की स्वतन्त्रता है किंतु दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचाकर नहीं। सामने वाला भी तो स्वतंत्र है, सबके लिए कानून है। अपनी बात को दूसरों की बात के साथ समझने का प्रयास करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

65

''व्यवहार कैसा''

इस पद या आसन पर आसीन होकर जो व्यवहार तुम दूसरों के साथ कर रहे हो कदाचित् तुम उस व्यक्ति के स्थान पर होते और वह व्यक्ति तुम्हारे आसन पर, तब वह व्यक्ति तुम्हारे साथ यही व्यवहार करता तब भी तुम्हें यह व्यवहार स्वीकृत होता? यदि हाँ तब तो ठीक है तुम्हारा व्यवहार न्यायप्रिय है, यदि नहीं, तो सम्भव है तुम अनुचित व्यवहार कर रहे हो । अपने दृष्टिकोण से तुम्हें वस्तु की एक ही दृष्टि गोचर होती है। वस्तु के सम्यक् स्वरूप को समझने के लिए सभी दृष्टिकोणों से खड़े होकर देखना जरूरी होता है। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है जो व्यवहार तुम्हें अपने लिए पसन्द नहीं है वह व्यवहार दूसरों के साथ भी मत करो तथा वस्तु के समग्र तथा सम्यक् स्वरूप को समझने के लिए अनेकान्त धर्म और स्याद्वाद शैली को समझना अत्यन्त आवश्यक है। जीवन की समग्रता, समीचीनता तथा सुखद पूर्णता के लिए अनेकान्त व स्याद्वाद अनिवार्य है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

66

"स्वभाव सज्जन का"

सज्जन पुरुष सफेद रंग की तरह होता है, सफेद रंग को किसी रंग के साथ मिलादो मिल जायेगा, मिलते ही उस रंग की चमक को वृद्धिंगत ही करेगा किन्तु दुर्जन पुरुष काले रंग की तरह से हैं जिस किसी भी रंग के साथ मिलाओ उसे ही खराब कर देगा केवल काले रंग के साथ ही ठीक बैठेगा। सभी रंग मिलकर भी सफेद रंग नहीं बना सकते किन्तु कोई रंग बिगड़ता चला जाए तो काला ही बनेगा अथवा सज्जन पुरुष स्वर्णवत् होता है स्वर्ण को कितने ही बार तोड़ो जोड़ो उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता और ना ही उसकी कीमत कम होती है। हर एक रत्न सोने में ही जड़ा जाता है, सोने में जड़ने से उसकी कीमत और अधिक बढ़ जाती है। स्वर्ण के साथ रत्न अधिक सौन्दर्य युक्त हो जाता है इसी प्रकार सज्जन के साथ गुण विशिष्टता को प्राप्त हो जाते हैं। दुर्जन मिट्टी के घर की तरह होता है एक बार टूट गया तो फिर कभी जुड़ता नहीं।

"सज्जन पै सौ - सौ चले दुर्जन चले न एक।
ज्यों जमीन पाषाण की ठोके ठुके न मेख॥

67

"शक्ति का समायोजन करें"

प्रत्येक क्रिया को सम्पन्न करने हेतु शक्ति की आवश्यकता होती है चाहे क्रिया शुभ हो या अशुभ। बिना शक्ति के संसार की कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं की जा सकती। यदि क्रोध करने से शक्ति कम होती है तो क्षमा करने में भी शक्ति चाहिए, मान कषाय के पोषण में शक्ति कम होती है तो मार्दव भाव के लिए भी शक्ति चाहिए, मायाचारी से शक्ति कम होती है तो सरलता - सहजता के परिणामों के लिए शक्ति चाहिए, तृष्णा व लोभ की पुष्टि में शक्ति कम होती है तो संतोष भाव व समता भाव के लिए भी शक्ति चाहिए। पतन के लिए शक्ति चाहिए और उत्थान के लिए भी। जीवन के विनाश के लिए भी शक्ति की आवश्यकता है तो जीवन विकास के लिए भी। जीवन में शक्ति का संचय होता है शक्ति का सुदपयोग करने से। किसी यंत्र का सदुपयोग करे तो वह सही चलता है, ज्यादा चलता है किंतु दुरुपयोग करने से शक्ति का सम्यक् उपयोग नहीं कर पाता जिसने भी जीवन में किसी भी प्रकार की शक्ति का दुरुपयोग किया है उसकी शक्ति विनष्ट हो गयी, सम्यक् उपयोग करने से जीवन शक्ति का पुंज बन जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

68

''दर्पण भी निर्मल हो, दृश्य व दृष्टा की दृष्टि भी''

वही चित्त दर्पण के समान निर्मल हो सकता है जो विषय - कषाय व पाप - वासनाओं से मुक्त हो जाता है। जब तक चित्त में विषय - कषायों की तनिक भी मलिनता है तब तक निर्मल आत्मा से साक्षात्कार नहीं होता । यदि दृश्य की दृष्टि समल है तब भी निर्मल दर्पण में दृश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं हो सकेंगे और यदि दृश्यमान वस्तु मलिन हो तब भी दृष्टि या दर्पण के निर्मल होते हुए भी दृश्य निर्मल न दिख सकेगा । यदि दर्पण चंचल है या दृश्यमान वस्तु चंचल है या दृष्टि चंचल है तब भी दृश्यमान वस्तु स्पष्ट व स्थायी न दिख सकेगी । अतः चित्त रूपी दर्पण को भी निर्मल बनाना है तथा दृश्यमान आत्मा को भी व सम्यक्त्व रूपी दृष्टि को भी निर्मल बनाना है । चित्त की चंचलता को रोककर तन व वचन को स्थिर करके आत्मा में आत्मा को निहारने का सम्यक् पुरुषार्थ करना है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

69

''क्या है समीचीन दृष्टि''

समीचीन दृष्टि का आशय यह कदापि नहीं हो सकता कि वह मात्र अच्छाईयों को ही देखता है और मात्र बुराई को देखने वाला भी समीचीन दृष्टा नहीं हो सकता । समीचीन दृष्टि का आशय तो यही होना चाहिए कि जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही देखो । संसार में एकान्ततः न कुछ भी अच्छा है और न ही एकान्ततः कुछ भी बुरा । जो तुम्हारी दृष्टि से अच्छा है वह दूसरे की दृष्टि से बुरा भी हो सकता है। कोयल को आम मिष्ट व इष्ट लगता है तो कौए के लिए नीम की निबोली ही मिष्ट व इष्ट प्रतिभासित होती है। संसार में न नीम की निबोली बुरी है न आम और संसार मे सर्वतः न नीम की निबोली अच्छी है न सर्वतः आम । जिसका जैसा स्वभाव है वैसा ही मानना सम्यक् समीचीन दृष्टि है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

70

''कौन है सम्यक् दृष्टा''

जिसके पास सम्यक् दृष्टि है वही सम्यक् दृष्टा है। सम्यक दृष्टा वही है जो सत् को सत् और असत् को असत् रूप देख सके,जो नित्य को नित्य व अनित्य को अनित्य देख सके, जो भेद को भेद व अभेद को अभेद रूप देख सके, जो एक को एक रूप व अनेक को अनेक रूप देख सके, जो प्रत्येक वस्तु को अनेकांत रूप तथा प्रत्येक दृष्टिकोण को स्याद्वाद के चश्मे से देख सके । जो हर वस्तु की अच्छाई को अच्छाई रूप व प्रत्येक वस्तु की बुराई को बुराई रूप देख सके, जो प्रत्येक व्यक्ति की गुण को गुण रूप व प्रत्येक अवगुण को अवगुण रूप देख सके, वही सम्यक् दृष्टि कहलाने का अधिकारी है। जिसके पास समीचीनता से देखने की दृष्टि नहीं है तो समझों वह महानुभाव मिथ्यादृष्टि ही होगा । सम्यक् दृष्टा ही अपनी आत्मा का सृष्टा होता है। अपनों को ही नहीं दूसरों को भी इष्ट व प्रकृष्ट - मिष्ट रूप भासता है, किसी भी सम्यक्दृष्टि को अनिष्ट कारक नहीं होता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

71

''कौन हो सकता है प्रशासक ?''

प्रशासक शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट + शासक । शास् धातु का अर्थ है मर्यादा में चलना,सीमाओं में चलना, नियंत्रण में रहना या रीति व नीतियों का पालन करना, क्रिया करना, रहना प्रवृति करना इत्यादि । प्रकृष्ट शासक कौन हो सकता है? जो स्व शासन में रहे, जो स्वाशी है अर्थात् जिसे अपनी आत्मा पर पूर्ण विश्वास है, पूर्ण अधिकारी है, पूर्ण नियंत्रण है, पूर्ण संयम है वही स्वानुशासित या अनुशासित कहलाता है। आत्मानुशासन का आशय है जो अपने अनुशासन में हो, जिसके लिए किसी शासन में रहना उचित नहीं है । जिसके शासन में सभी शासित बनकर रहना चाहे वह आत्मानुशासित है। आत्मानुशासितों का ही शासन प्रकृष्ट हो सकता है, उच्छृंखल शासकों के शासन को प्रमाणित कौन कहे । जिसने अपनी इन्द्रियों को,मन को, आत्मा को जीत लिया है ऐसे जितेन्द्रिय का शासन ही प्रशासन, यही जिनशासन है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

72

''सह अस्तित्व की भावना''

जहाँ स्पर्श है वहाँ वर्ण भी है, जहाँ वर्ण है वहाँ रस भी है,जहाँ रस है वहाँ गंध भी है, जहाँ गंध है वहाँ चारों गुण हैं, जहाँ स्पर्श है वहाँ भी चारों गुण हैं, जहाँ रस है वहाँ भी चारों गुण हैं, जहाँ वर्ण है वहाँ भी चारों गुण हैं यही सह अस्तित्व का सिद्धान्त कहलाता है । जहाँ नेवला रहते है वहाँ सर्पों के रहने में बाधा है, जहाँ सर्प रहते हैं वहाँ मेंढ़कों को व्यवधान है, जहाँ मेढ़क रहते हैं वहाँ केचुओं को प्रतिकूलता है, जहाँ कुत्ते रहते है वहाँ बिल्ली को परेशानी हो सकती है, बिल्ली के रहने पर चूहे निराकुल नहीं रह सकते, जो दूसरे के अस्तित्व को सहने में असमर्थ है वह अपना जीवन सुख शांतिपूर्वक नहीं जी सकता । संसार के सब लोग हमें सहे यह नाममुकिन है किंतु जब हम संसारी प्राणियों को सहते है तो संसारी भी हमें सहते हैं, यह सहने की कला ही सुखद जीवन की कला है ।अपना क्रोध, मान, माया लोभ इतना प्रबल मत करो कि दूसरे के मन में क्रोध, मान, माया या लोभ का उदय आ जाये। सह अस्तित्व की भावना ही स्व - पर के सुखी जीवन का एक अमोघ मंत्र है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

73

''अनेकांत के मायने अनेक का अंत नहीं''

अनेकांत का अर्थ अनेक का अंत होना नहीं है अपितु अनेकांत का सही अर्थ है अनेक अंतों का समूह । अंत का अर्थ मृत्यु या विनाश ही नहीं होता वरन् वस्तु का धर्म यह भी अर्थ होता है और यहाँ यही अर्थ प्रासंगिक है। जैसे संत का अर्थ होता है "धर्म से संयुक्त" (स्+अंत= संत) प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म या विशेषताऐं होती हैं, संसार में अनंत पदार्थ हैं, प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति में अनेक धर्म विद्यमान हैं। जो अनेक धर्मों का विरोध करे/ अस्वीकार करे तो समझो उसने अभी तक अनेकांत को समझा ही नहीं है। अनेकांत को समझने वाला कभी एक ही धर्म का हठाग्रही/ दुराग्रही नहीं होता, वस्तु या व्यक्ति के अनेक गुण,धर्म, विशेषताओं को समझने के लिए दृष्टि का अनेकांतात्मक बनना अत्यंत आवश्यक है। अपने जीवन में या संसार में सुख शांति की स्थापना मात्र वही कर सकता है जिसके जीवन के प्रत्येक पहलू में, प्रत्येक क्षण में अनेकान्त का फल विद्यमान हो । अनेकांतवादी सम्पूर्ण द्रव्य, गुण व पर्यायों का ज्ञाता एवं पूर्ण ज्ञानी हो सकता है। अनेकांत धर्म को समझे बिना व्यक्ति मोह के अंधकार में ही भटक सकता है मंजिल को नहीं पा सकता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

74

''अग्नि और जल के समान है - राग व विराग''

व्यवहारिक जीवन राग - द्वेष से मिश्रित होता है कभी राग की तीव्रता होती है तो कभी द्वेष की तीव्रता होती है, कभी राग मंद हो जाता है तो कभी द्वेष मंद हो जाता है बिना राग - द्वेष के व्यवहारिक जीवन चलता नहीं है। कभी राग को प्रशस्त मान लिया जाता है तो कभी द्वेष को प्रशस्त मान लेते हैं किंतु राग - द्वेष को सामान्य संसारी प्राणी छोड़ नहीं पाते । जो निशंक है, निर्भीक है, निराकांक्षी, निस्पृह, निराकुल, निर्विकार व निर्विचार है ऐसा निर्ग्रन्थ साधक ही पूर्ण विरागता के रंग में रंग पाता है। विरागता ही वीतरागता की जननी है। वीतरागता सकल परमात्मपने का अनिवार्य लक्षण है। जीवन में ज्यों - ज्यों राग - द्वेष वृद्धि को प्राप्त होते हैं त्यों - त्यों जीवन में दुःख, आकुलताऐं, प्रतिकूल परिस्थितियाँ, आर्त ध्यान वृद्धिंगत होता है तथा विरागता के उत्पन्न होते हुए, स्थित रहते हुए एवं सम्वर्द्धित होने से जीवन में सुख शांति की वृद्धि होती है। सच मानों तो राग अग्नि की ज्वाला की तरह है और विराग है आत्मा को शांति देने वाला शीतल जल ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

75

''निवृत्ति की साधना का हेतु है - गुप्ति की साधना''

अशुभ से बचने के लिए तथा शुभ में प्रवृत्ति करने की साधना में जिस प्रकार समिति सहायक होती है उसी प्रकार शुभ प्रवृत्ति की साधना से निवृत्तिमार्ग में मनो गुप्ति, वचन गुप्ति व काय गुप्ति सहायक होती है । मन, वचन व काय की प्रवृत्ति ही योग है। इन तीनों के निमित्त से आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है और यह योग क्रिया ही आस्रव है । आस्रव के साथ बंध का क्रियाकारक संबंध है। बंध किया है तो उसके फल को भी भोगना पड़ेगा, फल भोगने के लिए संसार में रहना जरूरी है फल पाने के लिए इत्यादि आवश्यक है। फल मीठा हो या कड़वा चखना ही पड़ेगा, चखते समय यदि हर्षमान हैं तो भी कर्म का बंध होगा और आर्तरूप परिणाम हैं तब भी कर्म बंध होगा अतः उचित यही है कि कर्मों को बुलाया ही न जाये,तो कर्म हमें नहीं बांध सकेंगे । कर्म बंधते हैं मिथ्यात्व, अविरति,प्रमाद, कषाय व योग से । निवृत्ति की साधना का हेतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद,कषाय व योग से बचना है तथा जीवन में व्रत, समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा व धर्म की साधना करते हुए आत्मालीनता रूप ध्यान करना है यह त्रिगुप्ति की साधना से ही संभव है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

76

''कौन है अपना मित्र व शत्रु?''

यह आत्मा अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ भावों से पुण्य और पाप कर्मों का बंध करता है उन कर्मों के उदय आने पर हर्ष व विषाद करता है पुनः हर्ष विषाद के साथ राग - द्वेष से नूतन कर्मों का बंध करता है पुनः उसके उदय से हर्ष - विषाद करता है यह श्रृंखला अनादि काल से प्रत्येक जीव के साथ चल रही है परिणाम स्वरूप इस आत्मा को संसार में जन्म मरण करना ही पड़ता है जन्म मरण करने से इस आत्मा को निरंतर दुःख, संक्लेशता व अशांति की ही अनुभूति होती है यदि यह जीव राग - द्वेष - मोह आदि विकारी भावों को कम करे तो संसार के किनारे पहुँचे, तब ही भव सागर को पार कर सके । मोह को छोड़े बिना कर्मों का नष्ट होना असंभव ही है। अतः आत्मा ही अपना उद्धारक है और वही अपना पतितोन्मुखी कारक मुख्य हारक है, वही अपना शत्रु है वही अपना मित्र ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

77

''अनमोल क्या''

जीवन में अनमोल क्या है? वही न जिसका कोई मूल्य नहीं आँका जा सके । संसार में ऐसे अनंत पदार्थ हैं जिनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। प्रकृति के द्वारा प्रदत्त सभी पदार्थ अनमोल ही हैं जिन्हें कोई भी प्राणी कृत्रिम तरीके से नहीं बना सकता । कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिन्हें प्राप्त करके हम स्वयं अनमोल बन सकते हैं तथा कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जिनकी संगति हमें निर्मूल्य या तुच्छ बना देती है । जिन पदार्थों की संगति से हमारे विषय - कषाय शांत हों राग - द्वेष क्षीण हो, मिथ्यात्वादि नष्ट हों, पापों से मुक्ति मिले, जन्म - मरण छूटे, दुःखों के कर्दम से निकल सकें, जिन्हें पाकर हमारा जीवन सार भूत और सुखों का आधार भूत बने, जीवन के सभी अभिशाप वरदानों में बदल जायें, जिसका सामीप्य या स्मरण मात्र भी हमारे आध्यात्मिक जगत में दिव्य ज्योति का हेतु बने वे सभी निमित्त हमारे लिए अनमोल ही हैं, विशुद्ध भावों से युक्त जीवन का प्रत्येक क्षण हमारे लिए अनमोल है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

78

''क्या है पैमाना''

हमने अपने जीवन में जिन - जिन पदार्थों को प्राप्त किया है, हमारी तीक्ष्ण बुद्धि ने उन सभी का मूल्यांकन भी कर लिया है। हम मुद्रा बहुल जगत में रहते - रहते संसार के सब पदार्थों को मुद्रा से तौलने लगे हैं, यहाँ तक कि हमारे जीवन में आदमी की कीमत भी मुद्रा से होने लगी है। सरकारी मुद्रा से युक्त कागज को सर्व सामर्थ्य प्रदान बना दिया है। हम समझने लगे हैं कि उस मुद्रा से सब कुछ खरीद सकते हैं, किंतु मैं सोचता हूँ जो मुद्रा से लिया जाता है वह आते - आते मुर्दा हो जाता है (मुद्रा की रेफ नीचे से ऊपर हो जाती है फिर मुद्रा भी मुर्दा हो जाती है) इस मुद्रा ने संसारी सर्व पदार्थों को मुर्दों के तुल्य कर दिया है। मुद्रा को पाकर हम अपनी स्वाभाविक मुद्रा (शुद्ध स्वभाव) को भूल गये हैं । आवश्यकता है हम मुद्रा की मुर्दानगी जानकर चेतना की शाश्वत मुद्रित मुद्रा को पहचान लें । यदि ऐसा नहीं कर सके तो संसार की सर्व मुद्रायें और शरीर की सर्व मुद्रायें व्यर्थ ही होंगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

79

"चक्रवर्ती ब्याज"

कोई मूलधन सरल ब्याज से माना कि चार वर्ष दो माह में दुगुना हो जाता है, वही मूलधन चक्रवर्ती ब्याज लगने से (उसी दर पर) लगभग तीन वर्ष में ही दुगुना हो जाता है, इसी तरह जो व्यक्ति पूर्व में अर्जित पुण्य फल को तत्काल भोग लेते हैं, वे सामान्य दशा में ही रह जाते हैं, और जो अपने पुण्य को चक्रवर्ती ब्याज की तरह वृद्धिंगत करते हैं वे चक्रवर्ती बन जाते हैं। जो पुण्य पुरुष पुण्य के फल से विरक्त रहते हैं वे सौधर्म इन्द्र, लौकान्तिक देव या तद्भव मोक्षगामी चक्रवर्ती, बलभद्र व कामदेवादि बनते हैं तथा जो अत्यंत पुण्यवान् होते हैं तथा अपने पुण्य को पर कल्याणार्थ व्यय करते हैं वे महापुरुष/ युगपुरुष तीर्थंकर कहलाते है ।जब तक प्राणी सविकल्प दशा में लीन है तब तक उसे बुद्धिपूर्वक पुण्य कार्य करने ही चाहिए तभी वह आत्म कल्याण कर सकता है अन्यथा पुण्य का त्यागी - रागी - द्वेषी भव भ्रमण ही करेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

80

“अनर्घ्य पद कहाँ ”

आज मानव ने संसार के सभी पदार्थों/ वस्तुओं का या पदों का मूल्य निश्चित कर लिया है, ये भी संभव है कि उन्हें ये लौकिक पद धन के माध्यम से प्राप्त हो जाये, अतः जो पद धन से प्राप्त किया जा सके उसे “अर्घ्य” पद कहते है। ‘अर्घ्य’ का अर्थ है मूल्यवान । किंतु संसार में कुछ ऐसे भी पद हैं जो किसी भी कीमत के बदले प्राप्त नहीं किये जा सकते, उन पदों को जैनाचार्यों ने “अनर्घ्य पद” कहा पंच परमेष्ठी (अरहंत, सिद्ध, आचार्य,उपाध्याय व साधु-दिगम्बर संतो का पद - जो विरागता या वीतरागता के धरातल पर ही संभव है) वे अन्य किसी कीमत पर प्राप्त नहीं होते तथा धर्म को कभी भी किसी भी कीमत पर प्राप्त नहीं किया जा सकता । तीर्थंकर आदि महत्वपूर्ण पद धन त्याग से नहीं धर्मानुरागी बनने से ही संभव हैं। इसलिये तो पंच परमेष्ठी नवदेवता के श्री चरणों में अनर्घ्य पद की प्राप्ति हेतु संसार की सर्वश्रेष्ठ मूल्य अर्घ्य को चढ़ाते है। अर्घ्य को त्यागे बिना अनर्घ्य पद की प्राप्ति असंभव है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

81

‘‘एक बनो और नेक बनो’’

जो व्यक्ति अपनी एकत्व - विभक्त आत्म स्वरुप को प्राप्त कर चुका है अथवा एकत्व दशा को पाने में प्रयत्नशील है वही व्यक्ति, जीवात्मा नेक है। अभी हम संसार दशा में पुद्गल के साथ एकमेक हो रहे हैं, भेद - विज्ञान के अभाव में संसारी प्राणी बहिरात्मा बुद्धि से शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं अथवा आत्मा और शरीर के स्वभाव, गुण, धर्म से अनभिज्ञ हैं, वे सभी प्राणी धर्म की दृष्टि में नेक नहीं हैं। वे विवेक हीन तथा अनेक जन्म - मरण के शिकार हो रहे हैं। हमारा शाश्वत स्वरूप सिद्ध व शुद्ध दशा है, उस अवस्था में आत्मा में एक परमाणु मात्र का भी प्रवेश नहीं है, वह परम एकत्व की दशा ही नेक (भले) पने की पहचान है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

82

''आत्मलीन तीन विलीन''

राग - द्वेष और मोह ही सर्व दुःखों का हेतु है, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र भव भ्रमण का कारण है। मन - वचन व काय की प्रवृत्ति ही आस्रव की जननी है, रस गारव, ऋद्धि गारव, सात गारव दुर्गति के हेतु हैं, द्रव्य कर्म, भाव कर्म एवं नोकर्म का आत्मा के साथ एकमेक हो जाना ही संसार है। सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है किंतु आत्मलीन योगी इन तीनों का भी विलय कर देता है तथा निश्चय मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर आत्मा के निस्सीम एवं शाश्वत वैभव को प्राप्त कर लेता है, भव्य वही है जो तीनों का विलय करके आत्मलीन होने में समर्थ है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

83

''सुमन लख सुमन बन''

सुमन सभी के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले होते हैं, सु का अर्थ है अच्छा और मन का अर्थ है चित्त,अच्छे चित्त वाले सभी के लिए अच्छे लगते हैं भले ही अच्छे शरीर व वचन वाले अच्छे लगें या न भी लगें। किंतु अच्छे चित्त वाले योगी के समक्ष सिंह और गााय, नेवला व सर्प, कुत्ता - बिल्ली भी प्रेम भाव से आकृष्ट होते हैं, प्रकृति भी आनन्दित हो जाती है। सुमन का दूसरा अर्थ है सुम - न अर्थात - सूम मत बनो, कंजूस मत बनो जो कुछ है उस समस्त उपलब्धि को बाहर ले जाकर लुटा दो तब तुम्हें और अधिक मिलेगा । सुमन (पुष्प) यही तो करते हैं अथवा कहते हैं कि तुम सुंदर बनो, महकते रहो और नम्रता की प्रतिमूर्ति बनो तो सभी लोग तुमसे प्यार करेंगे, तुम्हें अपने हाथों में लेंगे, सिर पर धारण करेंगे, ओंठों से चूमेंगे यदि ऐसे नहीं बने तो काँटे की तरह फेंक दिये जाओगे, चाहे सूखे रहो या हरे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

84

''पत्थर बनो तो ऐसे''

संसार में पत्थर अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध है, तुम भी संयम साधना के लिए अपने चित्त को कठोर बना लो, कोई कितना ही प्रहार क्यों न करे तुम पत्थर बन कर सहन करते रहो, कोई हथौड़ा मारे या छैनी से काटे, छाँटे या रगड़ करे किंतु तुम घबड़ाना नहीं, टस से मस मत होना, तुम जितने ज्यादा कठोर होंगे उतनी अधिक संभावनाऐं होंगी कि कोई कुशल शिल्पकार तुम्हें तराश कर परमात्मा का आकार दे सके, भक्तों की लम्बी कतार तब चरणों में मस्तक झुकायेगी अपना शीश रूप श्रीफल तब चरणों में चढ़ायेगी। क्यों मूर्ति कठोर पाषाण की बनती है फूल जैसे कोमल पत्थर की नहीं, फूल सी मिट्टी की भी नहीं । तुम ऐसे पत्थर मत बनो जो स्वयं टूट कर या बिना टूटे दूसरों को चोट पहुँचाता है। तुम तो चोट सहन करने वाले बनो जिससे तुम्हारे सारे खोट निकल जाएँ। दूसरी बात यह कि पत्थर दिलों में लिखा परमात्मा का नाम कभी मिटता नहीं है, पत्थर कभी मुरझाते या कुम्हलाते नहीं है । पत्थरों का सौन्दर्य फूलों की अपेक्षा अधिक काल तक रहता है, यद्यपि फूलों ने भी काँटों की चुभन सहन की है तभी वे सबके प्रिय बनें। और पत्थर ने चोट सहन की तभी वह सबका पूज्य बना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

85

''भावों का प्रभाव''

संसारी प्राणी संसार में जन्म - मरण व भव - भ्रमण करते हुए संसार की अनंत दशाओं को प्राप्त कर रहा है, किंतु वे सभी दशाऐं शाश्वत नहीं हैं, अपने शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति ही शाश्वत है, गुण शाश्वत है, स्वधर्म शाश्वत है, अपनी प्रकृति व नियति शाश्वत है उसे प्रकट करने के लिए बाह्य साधन भी आवश्यक हैं। अधिकांश लोग यही कहते हैं कि जैसे निमित्त होंगे वैसे ही भाव बनेंगे, जैसे निमित्त होंगे वैसे ही कार्य होंगे और साधनों को संग्रह करने में ही लगे रहते हैं किंतु अकेले साधनों से भी काम नहीं चलेगा बिना भाव के साधन कभी कार्यकारी नहीं होते, वन में एकांत में भी कोई दोषग्रस्त विषयासक्त हो सकता है और कोई महलों में भी निर्विकार रह सकता है। देखो विश्वामित्र और पाराशर ऋषि वन में भी साधना से च्युत हो गये और भरत जी महलों में भी वैरागी बन कर रहे । भाव ही विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, जीवन में भावों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। आप कहीं भी रहकर अपने भावों को संभाल सकते हो । घी के डिब्बे में भी छाछ भरी जा सकती है व छाछ के डब्बे में घी, मात्र लेवल को मत देखो अंतरंग को देखो क्योंकि छाछ का लेवल लग जाने से घी छाछ नहीं हो जायेगा,मात्र अस्तबल में गधा बांध देने से वह घोड़ा नहीं हो जायेगा और घोड़ा गधों के बीच में भी घोड़ा ही कहलायेगा। साधनों के चक्कर में मत पड़ो समीचीन साधना को पकड़ो भावों को बदलो ।

86

''प्रिय नहीं पूज्य भी''

बाह्य सौन्दर्य के कारण व्यक्ति लोकप्रिय ख्यातिलब्ध बन जाता है, बाह्य दृष्टि वाले व्यक्ति - किसी भी वस्तु या व्यक्ति के केवल बाह्य सौन्दर्य को ही देख पाते है,बाह्य सौन्दर्य को देखने वाला तो बहिरात्मा या मिथ्यादृष्टि ही हो सकता है, बाह्य सौन्दर्य तो जीवन में कई बार मिला किन्तु स्थाई न ठहर सका वह हर बार ही नष्ट होता चला गया किंतु अंतरंग का सौन्दर्य यदि एक बार भी प्रकट हो जाये तो वह कभी नष्ट नहीं होगा, अंतरंग सौन्दर्य को देखने वाले व्यक्ति भी अभिवंदनीय होते हैं क्योंकि उनके पास अंतरंग के सौन्दर्य को देखने वाले दो सम्यक्दर्शन व सम्यक् ज्ञान रूपी नेत्र हैं। अंतरंग का सौन्दर्य मात्र प्रिय ही नहीं बनाता पूज्य भी बनाता है आप भी बाह्य सौन्दर्य के चक्कर में मत पड़ो अंतरंग के सौन्दर्य को निखारो, गुणों को प्रकट करो । दोषों का जितना अधिक परिमार्जन होगा उतना ही अधिक सौन्दर्य प्रकट होगा यही स्व पर के लिए पूज्यता, परमपूज्यता का कारण है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

87

''अभ्यास के बिना विस्मृति'

सईस घोड़े को नित्य अभ्यास कराता है, घुमाता है, डुलाता है, कलाकार अपनी कला का अभ्यास करता रहता है, योगी नित्य/ प्रतिदिन ध्यान - योग साधना करता है, पहलवान नित्य कसरत करता रहता है, विद्यार्थी नित्य अध्ययन करता है, भक्त नित्य प्रभु परमात्मा की भक्ति, स्तुति, वंदना, नमस्कार व स्मृति करता है, संयमी नित्य नियम पूर्वक संयम की साधना करता है, नृत्यकार नित्य नृत्य करता है, संगीतकार संगीत का अभ्यास करता है, मित्रगण मित्रता को दृढ करने के लिए बीच - बीच में बार - बार मिलते रहते हैं, धर्मात्मा जन समय - समय पर धर्म कार्य करते रहते हैं, दानीजन बार - बार दान करते रहते हैं उसी प्रकार वैरागी साधक को अपने ज्ञान का परिमार्जन करने हेतु, समीचीन श्रद्धा को दृढ बनाने हेतु तथा चारित्र को निर्मल बनाने हेतु निंरतर समीचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए, अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तवन करते रहना चाहिए, वैराग्य या संयम ऐसी चीज नहीं कि एक बार मिल गयी तो नष्ट ही नहीं होगी, ये तो दीपक की लौ की तरह कभी घटती रहती हैं कभी बढ़ती रहती हैं कभी बुझ भी सकती है। महल की सफाई व सुरक्षा भी जरूरी है नहीं तो महल भी झोपड़ी से ज्यादा बद्तर हो जायेगा ।

88

''खोजती हैं मंजिलें''

आलसी व्यक्ति इसलिए नहीं जागना चाहता है क्योंकि जागने पर उसे कुछ काम करना पड़ेगा, इंद्रियों को भी अपने विषयों में प्रवृति करनी पड़ेगी सोते समय इन्द्रियाँ, शरीर,मन को कुछ करना नहीं पड़ता । निरआलसी व्यक्ति इसलिए नहीं सोना चाहता क्योंकि सोते समय वह कुछ कर नहीं पाता, सोते रहने से अवसर हाथ से निकल जाते हैं, बिना पुरुषार्थ किये वह एक क्षण भी बिताना नहीं चाहता। जिनको सोने में आनन्द आ रहा है, जागना नहीं चाहते समझो वे आलसी हैं, अपने समय की बर्बादी ही उनका लक्ष्य है किंतु जो सोना नहीं चाहते, फिर भी उन्हे सोना पड़ता है जिससे आगे कार्य करने के लिए नव ऊर्जा प्राप्त हो जाये, नूतन आनन्द, उत्साह व उमंग बनी रहे, वे अप्रमत्त हैं, निरालसी हैं। निरालसी व्यक्तियों को खोजने के लिए मंजिले प्रज्वलित दीपक अपने हाथ पर रखकर खोजती रहती हैं किंतु आलसी व्यक्ति की मंजिल अभी भी अंधेरे में ठोंकरे खाती हुई भटक रही है, आलसी व्यक्ति खुद अपना ही दुश्मन है। इसलिए दूसरे भी उसे दुश्मन जैसे लगते हैं। निरालसी का कोई दुश्मन नहीं और वह भी किसी का दुश्मन नही।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

89

''जागो और सफलता हासिल करो''

बालू को पेलकर तेल नहीं निकाला जा सकता, जल मंथन से नवनीत प्राप्त नहीं किया जा सकता, अग्नि में शीतलता नहीं मिल सकती, सर्प के मुख में अमृत नहीं मिलेगा, बालू के लड्डू नहीं बनाये जा सकते, जहर के भक्षण से अमरत्व की प्राप्ति नहीं होगी हिंसा करके कोई दीर्घजीवि नहीं बन सकता, दूसरो को अशान्त करके शान्ति नहीं मिल सकेगी, वृक्ष को काटने से वृक्ष फलीभूत नहीं होगा, बीज को जलाने से वृक्ष नहीं उगेंगे, वृद्धों को दूध पिलाकर पहलवान नहीं बना सकते, पान के जो पत्ते पीले पड़ गये उन पर चाहे कितना ही पानी छिड़को उन्हें हरित नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार अब ऐसे कार्यो में मत उलझों जिसमें कोई सार ही न हो, अरे ! संसार में जब सुख है ही नहीं तो कहाँ मिलेगा अतः संसार में सुख खोजना मूर्खता है, संसार में दुःख खोजो यह थोड़े से प्रयास से ही मिल जायेगा । मोह दुःख का कारण है इसके रहते मोक्ष मार्ग असंभव है। अंधकार से दोस्ती करके प्रकाश को पास में नहीं बुलाया जा सकता, अंधकार को त्याग करने का संकल्प ही प्रकाश को बुलाने की प्रथम व अनिवार्य शर्त है, जीवन संयम से ही सार्थक बनेगा, समय रहते जीवन को सफल व सार्थक बनाओ ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

90

''जैसा दोगे वैसा ही पाओगे''

जो प्राणी दूसरे के धन का दुरुपयोग नहीं करता उसके धन का भी दुरुपयोग नहीं होता, जो दूसरे के शरीर का दुरुपयोग नहीं करता उसका शरीर कभी दुरुपयोगी नहीं बनता, जो दूसरों के वचनों का दुरुपयोग नहीं करता उसके वचनों का भी कोई दुरुपयोग नहीं होता,जो दूसरो के विचारों का दुरुपयोग नहीं करता उसके विचारों का भी दुरुपयोग नहीं होता, जो दूसरों की आत्मा का दुरुपयोग नहीं करता है उसकी आत्मा का भी कोई दुरुपयोग नहीं कर सकता, इतना ही नहीं जो दूसरे के उपकरणों की, धन की, तन की, वचन की, मन की, समय की, आत्मा की सदा रक्षा करता है उसके भी उपकरणों की, धन की, तन की, वचन की, समय की व आत्मा की रक्षा सदा होती है, दूसरों को अभय दान देने से निर्मलता, आहार दान देने से उत्तम भोग, ज्ञान दान देने से केवलज्ञान वसतिका दान से आवास मिलते हैं अर्थात् प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि आप जैसा दोगे वैसा ही पाओगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

91

''कौन है अपना कौन पराया''

कौन है अपना कौन पराया
समझ ले पर में क्यों भरमाया?

हे प्राणी ! तेरी आत्मा व उसके समस्त गुण व स्वभाव भी तेरे हैं, इसके अतिरिक्त पर गुण, परभाव, परधर्म कभी तेरा नहीं हो सकता, नहीं हो सकेगा। प्राणी की सबसे बड़ी भूल यही है कि वह अपनी वस्तु को भूलकर पर वस्तु के पीछे दौड़ रहा है पर का दिवाना हो गया पर पदार्थों के पीछे पागल बना फिर रहा है, पर की संभाल करना चाहता है, पर के चक्कर में पड़कर निज सम्पत्ति की, स्वभाव की, गुणों की बेकद्री कर रहा है। जो किसी भी परिस्थिति में हमारा साथ न छोडे वही वास्तव में हमारा है। हमारी आत्मा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ती अतः हमारी आत्मा ही हमारी है, हमारे गुणधर्म स्वभाव ही हमारे है, हमारी शुद्ध दशा या शुद्ध दशा प्राप्त करने की शक्ति हमारा कभी साथ नहीं छोड़ती अतः वह हमारी है। वह अग्नि की उष्णता व जल की शीतलता की तरह हमारे साथ ही रहती है, पर कभी हमारा साथ नहीं दे सकती, कभी साथ में रहती हुई सी प्रतीत होती है। पास में भले ही रहे किन्तु हमारा साथ न दे उसे कभी अपना मत समझो, साथी दूर का ही हो वह अपना ही है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

92

''जस को तस''

यदि आपको अपनी जन्म जयंती या दीक्षा जयंती मनवानी है तो दूसरों की जन्म जंयती व दीक्षा जयंती मनाओ । किंतु उनकी जन्म जयंती मनाओं जिन्होने जन्म पर और अन्त पर विजय प्राप्त कर ली हो, दीक्षा जयंती भी उनकी मनाओं जिनकी अंतिम दीक्षा हो तभी तो तुम अंतिम दीक्षा के पात्र बनोगे, जन्म - मरण पर विजय प्राप्त कर सकोगे, भावी मोक्षगामी की पूजा, भक्ति, स्तुति, वन्दना भी तुम्हें भावी मोक्ष गामी बनायेगी । तीर्थंकर प्रभु के पंचकल्याणकों की पूजा करने वाला वह पुण्यशाली व्यक्ति भी लोक पूज्य होता है तथा देवेन्द्रों के द्वारा उसके भी पंचकल्याणक मनाये जाते हैं, यह शाश्वत नियम है जस को तस ही मिलता है। निंदा करने वालो को निंदा, प्रशंसा करने वालो को प्रशंसा, वध करने वाला वध को, पूजा करने वाला पूजा को और दान देने वाला वैभव को, चोरी करने वाला दरिद्रता को प्राप्त होता है अतः तुम वही क्रिया करो जो तुम खुद के लिए चाहते हो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

93

''क्या है समर्पण''

बालू को मुट्ठी में भरकर कितना भी कसकर पकड़ लो वह शनै - शनै हाथ से फिसल जायेगी, जितना ज्यादा कसके पकड़ोगे उतनी जल्दी ही वह फिसलेगी । अपनी परछाई के पीछे - पीछे दौड़ने पर - सिर की परछाई तक पहुँचने के लिए जीवन भी गंवा देना, पा न सकोगे । पर कभी अपना नहीं होता, अपना कभी पराया नहीं होता । चिकनी मिट्टी को एक बार हाथ में लेकर कितना भी दूर फैंकना चाहो पर हाथ से चिपकेगी, लात मारो तब पैरो से चिपकेगी, अपनी परछाई को पीठ देकर कितना भी भागो वह पीछा नहीं छोड़ेगी अपना सदैव अपना है पराया सदैव पराया समर्पण भी यही है जो कभी भी किसी भी परिस्थिति में तुम्हारा साथ न छोड़े। जो तुम्हारे पुण्य उदय से तुम्हारे साथ आया है वह पुण्य से अपने कार्य की सिद्धि करने आया है वह तुम्हारा नहीं है तुम्हारे पुण्य का भक्त है, पुण्य नष्ट होते ही तुम्हे छोड़ कर चला जायेगा किंतु जो तुम्हारे लिए समर्पित है वह तुम्हें कभी नहीं छोड़ेगा,न दुःख में न सुख में, न स्वर्ग में न नरक में, न संसार में न मोक्ष में, अतः तुम भी किसी के लिए समर्पित होना चाहते हो तो चिकनी गीली मिट्टी की तरह बनो स्निग्ध से गीली हुई मिट्टी कभी छूटती नहीं सूखने पर चिपकती नही ।

94

''कैसी मृत्यु चाहते हैं आप ?''

संसार में जिसने जन्म लिया उसकी मौत सुनिश्चित है आप केवल समय का चुनाव कर लें कि आप किस समय में अपना मोह शरीर के साथ छोड़ सकते हैं और मृत्यु के आने पर ज्ञाता दृष्टा भाव से साक्षी बन देख सकते हैं। प्राण का पक्षी तन पिंजरे से अवश्य ही उड़ेगा किंतु आप तो इतना ही चुनाव करले कि आप अपने पार्थिक शरीर का त्याग किसी तीर्थ क्षेत्र पर करेंगे या कारागार रूपी इस घर में ही। मृत्यु तो अवश्य होगी मृत्यु के पूर्व आप साधर्मी जनों के बीच रहना चाहते हैं या विद्यार्थी, कामी, भोगीजनों के साथ बस इतना चुनाव करना है श्वांस का बटोही तो आप से अवश्य मुख मोड़ेगा ही किन्तु आप मात्र इतना चुनाव करलें कि आप अधीर होकर मरेंगे या धीरता से, वीरता से मरेंगे या कायर बन कर, संयम के साथ शरीर छोड़ेगें या असंयम के साथ, धर्मध्यान के साथ समाधि मरण करेंगे या आर्त व रौद्रध्यान के साथ कुमरण अब आप ही अपना चुनाव कर लें - आपको अपना भव भ्रमण बढ़ाना है या मिटाना है, कर्मों का और जटिल बंधन करना है या मुक्ति का यत्न करना है, मृत्यु की सफलता से (समाधिमरण करके) जीवन को सफल व सार्थक बनाना है या निष्फल और निरर्थक ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

95

''रफ्तार बढ़ाओ''

जीवन पर्वत से गिरती नदी की तरह या गगन में दौड़ते सूर्य, चंद्र ज्योतिष ग्रहों की तरह, आकाश में चमकती बिजली की तरह गतिशील है, इन्हें रोका नहीं जा सकता तीव्र वेग वाली नदी को रोकना असंभव है, सूर्य, चंद्रमा के विमानों को रोक पाना असंभव है, समुद्र की लहरों को रोक पाना असंभव है, गतिशील समय को रोक पाना असंभव है फिर किस प्रकार हम समय के आगे निकलकर जीवन को सफल व सार्थक करें? इसका मात्र अब एक ही उपाय है कि हम अपनी रफ्तार बढ़ा लें यदि हम ऐसा कर सके तो हम अपने जीवन पर विजय पा सकते हैं, हम जिन्दगी के गुलाम नहीं तब जिन्दगी हमारी गुलाम होगी, यदि हमने रफ्तार बढ़ा कर कर्मों को पीछे छोड़ दिया तो हम कर्मो के गुलाम नहीं कर्म हमारे गुलाम बन जायेंगे । यदि हम कोई कर्म ऐसे करें कि कार्य भी हमारे ऊपर हावी न हो सके हम स्वयं कार्यों पर हावी हो जाये तब कार्य की सफलता शत प्रतिशत हमारे हाथ में ही होगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

''संस्कारवान् कौन''

जिस परिवार में सदैव मिष्ट और शिष्ट वचन बोले जाते हैं, जहाँ पर सदैव मान - मर्यादा की रक्षा की जाती है, जहाँ पर वचन के धनी व्यक्ति रहते हों जो अपने से बड़ों की विनय व सम्मान करें छोटो को प्यार व वात्सल्य दे कोई किसी की उपेक्षा न करे, सभी एक दूसरे का ध्यान रखे जहाँ सूर्यास्त से सूर्योदय तक रसोई पूर्णतय बंद रहती हो, जहाँ पर प्रातः जागते ही सबसे पहले प्रभु परमात्मा व गुरु महात्माओं का स्मरण, वंदन, नमन, ध्यान व जाप किया जाता है, जहाँ प्रेम वात्सल्य की सरिता बहती है, जो अपने से ज्यादा दूसरों के हितों का भी ख्याल रखें, सबके प्रति विश्वस्त बने सबका विश्वास करें, जिसके जीवन में उदारता, न्याय प्रियता, सत्यवादिता, वाणी पर नियंत्रण,जीवन में संयम, धर्मलीनता, व्रत पालन में प्रवीणता, बुराईयाँ परित्यक्त हैं, गुणों को ग्रहण करने वाली चुम्बक बन गया है जिसका चित्त ऐसा मानव ही संस्कारवान् कहलाता है, मिश्री की मिठास तो अल्प काल तक अपना स्वाद देती है किन्तु संस्कारो की मिठास भवों - भवों तक मिठास देती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

"वही हो सकता है दिगम्बर"

संसारी प्राणियों की यह आदत है कि वह बुराई को छुपाता है अच्छाई को बाहर दिखाना चाहता है। बुराईयाँ सदैव ढाँकी जाती हैं अच्छाईयों को ढाकने की कभी आवश्यकता नही पड़ती, यदि कहीं गंदगी (विष्टा,कफ और थूक/श्लेष्मा) पड़ा हो तो समझदार व्यक्ति उस पर धूल मिट्टी डाल देते हैं जिससे उस बुराई का प्रभाव उस वातावरण पर न पड़े, अपशब्दों को भी ढांका जाता है, अशुभ पदार्थों को छुपाया जाता है, नकली वस्तुओं के ऊपर असली लेवल लगाया जाता है या नीचे नकली ऊपर मुख के समीप अच्छी वस्तु रखी जाती है कोई पुष्पों को धूलि से नहीं ढांकता, सुन्दरता पर असुन्दरता को धारण नहीं करता । अपने विकारादि को ढांकने के लिए ही वस्त्रादि धारण किये जाते हैं, मन के पाप ढाकने के लिए मीठे - मीठे वचन बोले जाते हैं किंतु जो अंदर बाहर दोनो तरफ से सुन्दर है (विकार विहीन है) वही हो सकता है दिगम्बर ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

98

''तू उसी का आश्रय ले''

जहाँ आत्मा का श्रेय यानि कल्याण हो अथवा जहाँ श्री अंतरंग लक्ष्मी, बहिरंग लक्ष्मी प्राप्त हो या श्री - स्त्री रुपी लक्ष्मी प्राप्त हो, या जहाँ पर मोक्ष मार्ग के गमन का श्रम किया जा सके, जहाँ शुभ कार्य का श्रेय प्राप्त हो, जहाँ आसरा सहारा मिले जहाँ यमराज का भी भय न रहे, जहाँ चारों कषायें शमित हो जाये, जहाँ पापों का त्याग हो, जहाँ पंचेन्द्रिय विषयों से विरक्ति हो जाये, जहाँ संसार शरीर व भोगों के वैराग्य का कारण हो, जहाँ आत्मा में रमण करने की विधि सीखने को मिले, जहाँ कर्मों का रण शांत हो जाये, जहाँ अपना धन गुणनिधि, जिन गुण सम्पत्ति की प्राप्ति सुरक्षा व संवृद्धि की संभावना हो, जहाँ कोई तुम्हारी निधि को छीन न सके, जहाँ परम बोध की प्राप्ति हो, जहाँ सबकुछ प्राप्त हो जाये, जिसे पाकर किसी दूसरे का ख्याल भी नहीं आये,जो शाश्वत साथ निभाये वही सच्ची शरण है, हे भव्य! तू उसी का आश्रय ले ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

99

''दृष्टि का खेल''

पुष्प (फूल) और काँटे दोनों सहोदर हैं, इनका जन्म एक ही वृक्ष रुपी माँ से युगल रूप से होता है पत्ती इनकी बड़ी बहिन है और सबसे छोटा भाई जो कुछ दिन बाद जन्म लेगा वह है फल । काँटो के बिना पुष्प असुरक्षित है तथा पुष्पों के बिना कॉटें शोभा विहीन कष्टकर व दुःख के साक्षात् जनकवत् प्रतिभासित होते हैं, कॉटों की चुभन सहे बिना फूलों का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता तथा पुष्प की सुरभि के बिना कॉटों की चौकीदारी/ सुरक्षा व्यवस्था निरर्थक है। काँटों की चुभन सह कर भी पुष्प काँटों कों अति सहजता व कोमलता के साथ चूमते हैं काँटों की चुभन भी उन पुष्पों को चुबंन सी लगती है तो कॉटों को पुष्पों का चुम्बन भी चुभन सा प्रतीत होता है यही तो अपनी - अपनी दृष्टि का खेल है, देखते है ऐसा कौन है जो काँटों को भी फूल सा मानता है और आज उन्हें भी पहचान लो जो पुष्पों के साथ भी काँटों जैसा व्यवहार करते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

100

''हमने भी की थी आरजू''

पुष्पों और फलों से लदे हुए किसी उपवन/ उद्यान या चमन को देखकर हर किसी राही के नेत्र, नासिका तृप्त होने लगते हैं, मन रूपी मयूर उद्यान रूपी सघन, श्याम घनों को देखकर अत्यन्त भाव विभोर होकर नाचने लगता है। बागवान पुष्पों को फलों को व सघन छाया युक्त हरे - भरे वृक्षों को देखकर परम आनन्द का अनुभव करता है, वृक्ष अपने जीवन को सफल व सार्थक मानता है, पुष्पों द्वारा आगामी पुष्पों की अगवानी व फलों द्वारा नूतन फलों का स्वागत किया जाता है पत्तियाँ नूतन नव पल्लवों का पलक पामड़े बिछाकर आतिथ्य करती है किन्तु वहीं पर उदास और मन - मसोस कर अलग - दूर पड़ा दिखाई देता है वह मासूम सा काँटा - मैने जाकर जब उससे उदासी का कारण पूछा तो बोला -

"बहारे आयें चमन में,
हमने भी की थी ऐसी आरजू"

किन्तु इस सत्य को आज कोई स्वीकार नहीं कर रहा अपितु मुझे ही पुष्पों का शत्रु घोषित किया जा रहा है अब तुम बोलो क्या यह उचित है?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

101

''क्या है नियति नर तरु की?''

मैंने जीवन में अनेक आम्र वृक्ष देखे उन सभी पर आम के ही फल दिखे, सेब के वृक्षों पर सेब ही देखे, संतरा के वृक्षों पर संतरा, मौसमी के वृक्ष पर मौसमी , पपीता के वृक्ष पर पपीता, जामुन के वृक्ष पर जामुन, नारियल के वृक्ष पर नारियल, अंगूर की बेल पर अंगूर, नीम के वृक्ष पर निबोली तो नींबू के वृक्ष पर नीबू । कहीं और कभी भी ऐसा देखने व सुनने में नहीं आया कि आम के पेड़ पर जामुन या निबोली या नारियल लगा हो । मैंने मन मे सोचा यह ठीक ही तो है जो जिसका वृक्ष है उस पर वही तो लगेगा अन्यथा कैसे हो सकता है किन्तु तभी अन्दर से आवाज आई मानव के बारे में क्या ख्याल है, क्या सभी मानव रूपी वृक्षों पर मानवता रूपी फल ही लगते हैं? या और कुछ भी?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

102

''बिना बोध के सब कुछ बोझ है।''

आज संसार के अधिकांश प्राणी अपनी जिन्दगी को बोझ मानकर ढो रहे हैं, हमने अपने कर्त्तव्यों को भी बोझ मान लिया है, अपनी नैतिक व मौलिक जिम्मेदारियों को भी बोझ मानकर पूरी कर रहे हैं, आत्म कल्याण के लिए किये गये व्रत - त्याग - तप - संयम भी बोझ से लगने लगे हं, यहाँ तक कि आमोद - प्रमोद के कार्य भी बोझ से लगते हैं, इतना ही नहीं जिन क्षणों में चित्त को प्रसन्न रखने हेतु मनोरंजन करते हैं वह भी बोझ बन गया है, बच्चों के साथ हँसना - खेलना, माता - पिता व बच्चों के प्रति किया स्नेह जो बोझ को हल्का ही करता है आप और हमने संस्कार वशात् उसे भी बोझ मान लिया है, हम इतने आदी हो चुके है कि अब बिना बोझ लादे चल नहीं सकते यदि चलने का प्रयास करेंगे भी तो हमारी गाड़ी (असंतुलित) हो जायेगी । यदि हमें यह बोध हो जाये कि जिसे हमने बोझ माना है वह बोझ नहीं मात्र एक भ्रामक कल्पना है तभी हमारी बोझ मुक्ति संभव हो सकती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

103

''इंसान की औलाद''

देखो आज पशुओं में अपनी जाति के गुण हैं हाथी में स्वाभिमान, सिंह में पराक्रम, कुत्तों में बफादारी, मयूरों में सुन्दरता, गायों में भद्रता, लोमड़ी में चालाकी, बिल्ली में गोपनीयता, गधों में मूर्खता, बंदरों में नकलचीपन, तितलियों में परागानुराग, भ्रमरों में दीवानापन, मछलियों में चंचलता, रीछों में अविवेकता किंतु आज इंसान की संतान ने अपने गुणों को छोड़कर पशुओं के गुणों को लेना स्वीकार किया है, आदमियों को पशु - पक्षियों की उपमा तो दी जाती है किंतु पशुओं को आदमी की उपमा नहीं दी जाती है और ये तो आप जानते ही हैं कि उपमा छोटों को बड़ों की दी जाती है, छोटों की उपमा बड़ों को नहीं दी जाती अब तुम ही बताओ कौन बड़ा है उपमेय या उपमान? इंसान की औलाद में आह्लाद/ प्रहलाद क्यों नहीं?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

104

''धर्म नीति की मिठास''

मैं समझता हूँ धर्म नीति शक्कर की तरह से है, वह शक्कर कभी भी, कहीं भी, कैसे भी किसी के द्वारा भी खायी जाये वह मीठी ही लगेगी। उस शक्कर को आटे में, बेसन में, सत्तु में, मावें, खीर में, दूध में, हलुआ में, लस्सी में, चाय में, ठण्डाई में किसी में भी मिलाकर खाओ वह शक्कर उस पदार्थ को भी मीठा कर देगी, धर्म को कोई भी, कहीं भी, कैसे भी, किसी भी वय में पीये वह धर्म सुखद ही होगा यदि वह शुद्ध/ सही धर्म है तो, किंतु राजनीति जल की तरह से है वह जल बिना अनुपात के जिस किसी भी वस्तु में डाला जाये तो वह वस्तु खराब हो जायेगी । अतः यह सिद्ध है राजनीति रूपी जल में शक्कर रूपी धर्म नितांत आवश्यक है किंतु धर्म रूपी शक्कर के बोरे में जल रूपी राजनीति डालना उस धर्म रूपी शक्कर को खराब करना है, यह कहना क्या उचित नहीं है?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

105

''क्या है रहस्य पूर्ण''

आप और हम संसार संबंधी, धर्म और कर्म संबंधी बहुत सारी बाते जानते हैं अनेक लोग ऐसे हैं जो हमसे कम जानते हैं तथा अनेक लोग ऐसे भी हैं जो हमसे ज्यादा जानते हैं, कुछ उससे भी ज्यादा जानते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो बहुत ज्यादा या सबसे ज्यादा भी जानते हैं, किंतु रहस्यपूर्ण चीज क्या है? प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई बात रहस्य पूर्ण अवश्य होती है और सुनो आप ये न सोचे कि रहस्यपूर्ण बात सबके लिए एक जैसी ही होती होगी ऐसा कुछ नहीं है, सत्यता यह है जिसे हम जानते है वह हमारे लिए रहस्यपूर्ण नहीं है बल्कि रहस्यपूर्ण वही चीज है जिसे हम आज तक नहीं जान सके, वस्तु या ज्ञान की प्राप्ति रहस्य नहीं है, रहस्यपूर्ण वही है जिसकी हमें निरंतर तलाश है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

106

''खेल में न हो राजनीति''

राजनीति को बचपन से लेकर पचपन तक और आठ से लेकर साठ तक या दशक से लेकर शतक तक भी खेल बना कर खेला जा सकता है किंतु खेल को कभी राजनीति बनाकर नहीं चलाना चाहिए अन्यथा खेल का संपूर्ण आनंद नष्ट हो जायेगा, जो खेल तनाव से मुक्ति और आनंद - प्रमोद के लिए होते है, वे खेल राजनीति के प्रवेश होते ही तनाव के कारण और अस्वस्थता के बीज बन जायेगें और राजनीति को खेल मानकर सहजता से खेलते रहोगे तो जीवन में कभी भी तनाव युक्त जीवन नहीं जीना पड़ेगा हाँ एक बात और ध्यान रखना खेल खेल में तो धर्म को/ संयम को / सदाचार आदि को ग्रहण किया जा सकता है किन्तु धर्म को संयम को या सदाचार को खेल नहीं बना सकते, उससे खिलवाड़ नहीं कर सकते, क्योंकि धर्म कल्याण की वस्तु है खिलवाड़ की नही ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

107

''यथा बीज तथा प्रतिफल''

कल हमने किसी पर पानी की चार बूंदे डाली थी आज हमारे सारे कपड़े भीगे चले जा रहे हैं, उछाले थे हमने तो मात्र दो छींटे कीचड़ के उन पर किंतु आज मैं पूर्ण रूप से कीचड़ में सना जा रहा हूँ, मैनें प्रमादवश या अज्ञानता वश दो काँटे उनकी राहों में क्या छिटके आज जब मैं अपनी राहों को देखता हूँ तो वह राह काँटो से परिपूर्ण मिली, कल मैने छीना था उसके हाथ से रोटी का एक टुकड़ा व पानी का एक कटोरा किंतु आज मैं देख रहा हूँ कि मैं जीवन भर रोटी के टुकड़े के लिए दर - दर की ठोकर खा रहा हूँ पानी के लिए वर्षों से तडफ रहा हूँ, और प्यार दिया मैने जिसे दो क्षण के लिए आज मै उसके प्यार में डूबा जा रहा हूँ, मुस्कराया था जीवन में एक बार उनके लिए मुझे जीवन में अब रोना न पड़ा तभी से मैं निरंतर मुस्करा रहा हूँ।

दे दे वही जो चाहता है,
न देना किसी को तू हरगिज वह
जो न हो मंजूर हमको कभी ।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

108

''पूजा अचेतन की ही क्यों?''

मानव पाषाण की प्रतिमा के सामने तो सिर झुकाने मे आनाकानी नहीं करता उस मूर्ति की पूजा तो बड़ी रुचि से करता है, भक्ति व अर्चना भी धूमधाम से करता है, श्रद्धा व समर्पण में भी कमी नहीं रखता, घंटो - घंटो तक भजन और कीर्तन भी कर लेगा, घृत का दीपक, श्री फल व अष्टद्रव्य चढ़ा देगा किंतु यह सब करने के बाद वह जीवंत परमात्मा को क्यों भूल जाता है, क्यों नहीं याद रखता परमात्मा बनाने वाली महात्मा की तपस्या को, क्यों उपेक्षा करता है मूर्ति में संस्कार देने वाले सूरिवर साधक की उसे उस पाषाण को तराशने वाले श्रमजीवी शिल्पकारों की स्मृति क्यों नहीं होती, वह क्यों नहीं विचारता उन पुण्यात्मा पुरुषों को जिन्होनें स्वकीय न्यायोपार्जित धन का सदुपयोग किया, उस आकर (खदान) के उदारपूर्ण त्याग और समर्पण को क्यों भूल जाता है, क्या अचेतन भगवान् की पूजन के साथ हमें सचेतन शक्ति रूप परमात्माओं की भी पूजा नहीं कर लेनी चाहिए?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

109

''पूजा बेमन से क्यों?''

प्रभु परमात्मा को मनाने के लिए शरीर को नाना प्रकार की यातना देना, लाउडस्पीकरों (उच्च ध्वनि प्रसारक यंत्रो) से चिल्ला कर पूजा भक्ति करना या रात - रात भर कीर्तन करना क्या ये सब जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकता है? अरे मूर्ख ! अपना मन बिना लगाये केवल द्रव्य सामग्री चढ़ाने से क्या पूजा पूरी हो जायेगी? क्या भगवान इतना ऊँचा सुनता है कि जोर - जोर से चिल्लाकर/ लाउडस्पीकरों से पूजा की जाये तभी सुनेगा? मैं समझता हूँ कि यदि पूजा में भाव लग जाये, मन वचन व काय को समर्पित कर दिया तो पूजा सार्थक हो गयी, परमात्मा से अपनी आत्मा के तार जोड़ देना ही पूजा है, स्विचबोर्ड में प्लग लगाने से ही बल्ब जल सकता है,प्लग का तार स्पर्शित हुए बिना बल्ब नहीं जल सकता उसी प्रकार आत्मा का परमात्मा से स्पर्शन, श्रद्धान, अनुभवन व लीनता हुए बिना पूजा व्यर्थ ही है, जब पूजा व्यर्थ या अधूरी है तब पुजारी का जीवन कैसे सार्थक हो सकता है, पूजा में मन लग गया तो चिल्लाना क्यों? और पूजा में मन नहीं लग रहा है तो भी चिल्लाना क्यों?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

110

''बदलते दौर में''

आज सर्वत्र तीव्र गति से बदलाव ही बदलाव दिखाई दे रहा है, फैशन और डिजाइन मौसम के बदलने से पहले ही बदल जाते हैं, गिरगिट को रंग बदलने में भले ही देर लगे किंतु फैशन व डिजाइन उससे भी जल्दी बदल रही है, पिता की पसंद और बेटे की पसंद एक नहीं हो पा रही है, सास के द्वारा सलेक्ट की गई वस्तु बहु के द्वारा रिजेक्ट कर दी जाती है फिर भी हर दम्पत्ति या माता - पिता अपनी अगली पीढ़ी के लिए सामान बनाकर या बचाकर रख रहें हैं, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि वह माता - पिता ऐसा क्यों कर रहे हैं? जब माता - पिता के द्वारा बनायी गयी भोजन सामग्री तक उसे पसंद नहीं, वस्त्र व आभूषण पसंद नहीं, अन्य कोई और वस्तु उन्हे पसंद नहीं तो फिर वर्षों की कमाई से वृद्ध अवस्था में ये बड़े - बड़े मकान क्यों बनाये जा रहे हैं। आने वाली पीढ़ी पर जबरदस्ती वजन मत लादो, खुद करो - खुदा के लिए खुद के लिए, वर्तमान में वर्तमान के लिए करो वर्तमान के लिए जीना सीखो, नयी पीढ़ी पुराने मकानों में न बसेगी उनको तुम्हारे द्वारा बनवाये मकानों को तुड़वाना पड़ेगा और फ्लेट बना कर ही रहना पड़ेगा।

111

''एक ही दुकान से''

एक ही दुकान से विभिन्न प्रकार के आभूषण खरीदे जा सकते हैं, दूसरी किसी दुकान से विभिन्न प्रकार के वस्त्र खरीदे जा सकते हैं, तीसरी किसी अन्य दुकान से विभिन्न प्रकार के अनाज तो चतुर्थ किसी अन्य एक ही दुकान से विभिन्न प्रकार के बर्तन, पंचम किसी अन्य एक ही दुकान से विभिन्न प्रकार के रत्न, षष्ठ्म किसी अन्य एक ही दुकान से विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री, सप्तम किसी अन्य एक ही सब्जी मण्डी से विभिन्न प्रकार के फल व सब्जियाँ खरीदी जा सकती हैं। एक ही जगह से व्यक्ति भिन्न - भिन्न प्रकार की उपलब्धि कैसे कर सकता है? इसका मूल कारण है हमारे परिणाम। हम जिस परिणाम के साथ इस विश्व में रहते हैं, जो कुछ भी करते है, देखते सुनते हैं उसके अनुसार ही हमें उसका परिणाम प्राप्त होता है, एक ही क्रिया के फल भिन्न - भिन्न परिणामों के कारण हमें भिन्न - भिन्न ही प्राप्त होते हैं एक ही जिनालय या समवशरण में जाने वाले व्यक्ति पृथक - पृथक अनुभूति, विशुद्धि व उपलब्धि को प्राप्त होते है, कोई महाव्रत, कोई अणुव्रत, कोई सम्यग्दर्शन कोई पाप का आस्रव करने में भी समर्थ होते हैं अतः सिद्ध है कि दुकान भले ही एक हो किंतु हमें माल हमारे द्वारा आयित भाव व देय मूल्य के आधार से ही प्राप्त होगा।